जलवायु परिवर्तन

o"kk vk/kkfjr {k=k ij iHkko % tu luokb

4 uoEcj 2009
ch- ,l- egrk lHkkxkj
t;ij] jktLFkku

cecoedecon Pairvi Oxfam India

जलवायु परिवर्तन

वर्षा आधारित क्षेत्रों पर प्रभाव : जन-सुनवाई

---

4 नवम्बर 2009

जयपुर, राजस्थान

जलवायु परिवर्तन

वर्षा आधारित क्षेत्रों में प्रभाव : जन सुनवाई

जयपुर 4 नवम्बर 2009

संपादन : अजय कुमार झा

संकलन : विनोद कोष्टी

लेआउट : रजनीश श्रीवास्तव

प्रकाशक : सिकोईडिकॉन, स्वराज, एफ 159—160, सीतापुरा औद्योगिक क्षेत्र, जयपुर-302022 (राजस्थान)

फोन : 0141—2771488 ई मेल : cecoedecon@gmail.com

सहयोग : ऑक्सफेम इण्डिया

मुद्रक : पैरवी, जी-30, प्रथम तल, लाजपत नगर-3, नई दिल्ली-110024

फोन : 011—29841266 ई मेल : pairvidelhi@rediffmail.com

अनुक्रम

ज्यूरी परिचय
प्राक्कथन
भूमिका

1	जलवायु परिवर्तन का हमारी संस्कृति पर प्रभाव	13
2	पलायान के अलावा और कोई रास्ता नहीं	16
3	मौसम परिवर्तन से आजीविका में बदलाव के अनुभव	18
4	कम होते जंगलों से बदल गया मौसम	21
5	प्यासी धरती, भूखे जानवर, मरता किसान	24
6	लुप्त होती पहाड़िया जनजाति	27
7	कपास के शहर अकोला में जलवायु परिवर्तन	31
8	पहाड़ों पर लुप्त हो रही हैं वनस्पतियाँ व सेब की प्रजातियाँ	34
9	जलवायु परिवर्तन से महिलाऐं अब और असुरक्षित	37
10	जलवायु परिवर्तन से निपटने के पुराने तरीके ज्यादा कारगर	40
11	जैविक खेती ज्यादा कारगर	42
12	कृषि का बदलता स्वरूप	44
13	खत्म होते प्राकृतिक संसाधन	47
14	चरवाहों पर प्रकृति और समाज की दोहरी मार	49
15	खेती से पलायन की ओर	51
16	किसानों की खत्म होती स्वाबलंबिता व आत्मनिर्भरता	54
17	जलवायु परिवर्तन का पशुधन पर प्रभाव	56
18	मौसम बदलाव और आदिवासी सभ्यता	57
19	पश्चिम चम्पारण में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव	59
20	बदलते मौसम से मालवा-निमाड़ की बिगड़ती खेती	61
21	रेगिस्तान की दस्तक	63
22	बुलढाणा जिला (महाराष्ट्र) में जलवायु परिवर्तन	65
23	बिन पानी सब सून	67
24	चाकसू (राजस्थान) में जलवायु परिवर्तन	69
25	जलवायु परिवर्तन से पशुपालन की बढ़ती समस्याऐं	71

जलवायु परिवर्तन

वर्षा आधारित क्षेत्रों में प्रभाव : जन सुनवाई

ज्यूरी

श्री अरुण कुमार 'पानीबाबा'

आप एक पत्रकार व पर्यावरणविद् हैं। इसके अलावा गाँधीवादी गाय, गंगा, हिमालय बचाओ समिति के अग्रणी नेता भी हैं। मौसम के बनावट पर हिमालय क्षेत्र व उसकी पारिस्थिकीय स्वायत्ता का दक्षिणी एशिया में निर्णायक भूमिका पर आप अध्ययनरत है।

श्री सी के गांगुली 'बबलू'

आप टिंबकटू कलेक्टिव के प्रणेता हैं व राजनीति एवं रंगमंच में सक्रिय हैं। आप जनविकास आंदोलन के संयुक्त संयोजक व आंध प्रदेश खेतिहर मजदूर संगठन के संस्थापक सदस्य हैं। आप परमाकलचर और प्राकृतिक खेती के मुखर वक्ता है। पारम्परिक विकास पद्धिति के आलोचक के रूप में भी आप जाने जाते हैं।

सुश्री कमला भसीन

आप दक्षिण एशिया में सक्रिय कार्यकर्ता, जेंडर प्रशिक्षक व विचारक हैं। आपने जेंडर के मुद्दे पर व्यापक रूप से लेखन किया है। आप संगत की सलाहकार, पीस वोमन एक्रास द ग्लोब (Peace Women across the Globe) की सह-अध्यक्ष व साउथ एशियन फॉर ह्यूमन राट्स की ब्यूरो सदस्य हैं।

श्री ओम प्रकाश जोशी

आप फलोदी विधान सभा क्षेत्र के विधायक हैं और पेशे से कृषक भी हैं। आप पब्लिक अनडरटेकिंग समिति के सदस्य भी हैं।

न्यायमूर्ति श्री पानाचंद जैन

आप राजस्थान उच्च न्यायालय के भूतपुर्व न्यायधीश हैं। आप पिछले 15 वर्षों से विभिन्न कानूनी व सामाजिक मुद्दों पर लेखन कार्य करते रहें हैं जो अग्रणी कानूनी पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। आपने पश्चिम बंगाल के सिंगूर, नंदीग्राम व अन्य जगहों में किसानों की बेदखली पर अंतर्राष्ट्रीय जन अदालत की अगुवाई भी की है।

श्री राजेन्द्र भानावत

आप राजस्थान सरकार में नरेगा आयुक्त हैं। आप 1988 से भारतीय प्रशासनिक सेवा में सेवारत हैं। आपने राज्य सरकार के विभिन्न विभागों - साक्षरता व प्रसार शिक्षा, पर्यटन व ग्रामीण विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया है। साक्षरता के लिए उत्कृष्ट योगदान हेतु NLM-UNESCO द्वारा आपको सम्मानित किया गया तथा राजस्थान के माननीय राज्यपाल जी ने पर्यटन के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान हेतु आपको स्टेट मेरिट प्रमाणपत्र द्वारा सम्मानित किया।

डॉ. सुमन सहाय

आप एक वैज्ञानिक हैं व जीन कैम्पेन की संयोजक हैं, जो किसानों के अधिकारों और भोजन व आजीविका की रक्षा के लिए समर्पित है। आपको 2001 में नाइट ऑफ द गोल्डन अर्क (नीदरलैण्ड) द्वारा सम्मानित किया गया और 2004 में कृषि, जेनेटिक संसाधन और पर्यावरण के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए बोरलॉग सम्मान प्राप्त हुआ।

न्यामूर्ति श्री वी. एस. दवे

आपने अपने कार्यकाल में कई उच्च न्यायिक पदों को सुशोभित किया। आप 1984 से 1994 तक उच्च न्यायलय में न्यायाधीश रहे तदोपरांत राजस्थान विधि आयोग के अध्यक्ष तथा राजस्थान उपभोक्ता विवाद निवारण समिति के अध्यक्ष के रूप में पद की गरिमा बढ़ाई। 1985 में आप गुजरात के साम्प्रदायिक दंगों के लिए गठित आयोग के अध्यक्ष रहे तथा 1994 में आपने लोकायुक्त के पद को गौरवांवित किया।

प्राक्कथन

भारत जैसे देश को अब जलवायु परिवर्तन की आहट से चौंकने या चेतने की आवश्यकता नहीं है। साल-दर-साल जलवायु परिवर्तन की पदचाप स्पष्ट और गंभीरतम होती नज़र आ रही है। इसी वर्ष ठीक-ठाक मानसून की भविष्यवाणी के बावजूद देश के 250 से अधिक जिले अकाल की चपेट में हैं। दूर की न सुनें और पास की देखें तो आई.पी.सी.सी. की रिपोर्ट में की गई भविष्यवाणियों और गणनाओं से ज्यादा मज़बूत साक्ष्य अपने देश में ही उपलब्ध हैं। चिंता का विषय सरकार व अन्य देशों द्वारा इन साक्ष्यों का निरादर है।

अब यह लगभग तय है कि जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव दक्षिण-पूर्व के एशियाई व अफ्रीकी देशों पर परिलक्षित होगा। इस वर्ष आए जलवायु परिवर्तन से संबंधित उग्र घटनाओं को ध्यान में रखें तो भारत, बंगलादेश, श्रीलंका आदि में यह स्पष्ट हो गया है कि मानव के द्वारा प्रकृति पर किये गए अन्याय को शीघ्रातिशीघ्र बंद करना होगा अन्यथा प्रकृति का न्याय अत्यंत ही बर्बर हो सकता है।

कोपेनहेगन में विकसित देशों को यह मानना होगा कि उनके द्वारा किये गए ऐतिहासिक उत्सर्जन का खामियाजा गरीबतम देशों पर होगा। हालांकि यह कोई नई बात नहीं है। नई बात सिर्फ यह है कि विकसित देश कुछ वर्षों तक भले ही खैर मनाऐं लेकिन हिसाब उनसे भी चुकता होगा। अपनी जीवनशैली को अधिकाधिक आरामदेह बनाने की इच्छा व नैसर्गिक व्यवस्थाओं व संसाधनों के अत्यधिक दोहन से जन्मा जलावायु परिवर्तन सदी की महानतम समस्याओं में से एक है और विकसित देशों को अपनी इच्छा के विपरीत इससे निपटने के लिए विकासशील देशों के साथ सहयोग करना ही होगा।

सारे देशों को यह समझने के लिए उपयुक्त समय है कि वाद-प्रतिवाद की राजनीति को छोड़ समस्याओं के सामुहिक और सम्मिलित प्रयास ढूँढें। खर्च की चिंता और इस पर निष्क्रियता बीतते हुए हर एक दिन के साथ कीमत को कई गुणा बढ़ाती रहेगी। मानवजनित जलवायु परिवर्तन से कुछ देशों को अंशकालिक और सामयिक लाभ हो सकता है लेकिन दीर्घकालिक परिणामों में जलवायु परिवर्तन के दुष्चक्र से वे भी नहीं बचेंगे।

जनसुनवाई में प्रस्तुत किये जाने वाले साक्ष्यों में कई संदेश हैं। सबसे स्पष्ट और प्रबल संदेश न्याय व बराबरी का है। विकसित देशों को विकासशील देशों की सतत विकास की आवश्यकताओं व माँगों को ध्यान में रखते हुए अधिकाधिक सहयोग और समर्पण नितांत आवश्यक है। विकासशील देशों के लिए संदेश यह है कि वे विकसित देशों की देखा-देखी न करते हुए उपलब्ध प्राकृतिक व नैसर्गिक संसाधनों के प्रकाश में ही अपनी आवश्यकताओं को सीमित करें। ऊर्जा की माँग पर उचित सीमा बांधना और हरित ऊर्जा के विकास के अधिकाधिक शोध, प्रयास व निवेश अपरिहार्य है। एक

और स्पष्ट संदेश कृषि, खाद्य व जल सुरक्षा से संबंधित पारंपरिक प्रयासों को पुनर्जीवित करने का है और पारंपरिक ज्ञान व नई वैज्ञानिक तकनीक, उपलब्धियों में सामंजस्य बिठाने का है।

जलवायु परिवर्तन की इस चुनौती का सक्षमता से सामना करने के लिए कई स्तरों पर वास्तविक प्रयासों की आवश्यकता है। बहुराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राज्य व स्थानीय स्तरों पर ऐसे प्रयास समन्वित रूप से तथा एक साथ करने की आवश्यक होगी। हालांकि ऐसे प्रयासों में सफल होने में एक सशक्त पहलू निजी स्तर पर प्रयास का है। यह निश्चितप्राय है कि जब तक हम अपने निजी जीवन व जीवनशैली में परिवर्तन की कोशिश नहीं करेंगे यह समस्या गंभीरतम होती जाएगी। बहुराष्ट्रीय, राष्ट्रीय व सरकारी/आधिकारिक प्रयासों की महत्ता को नज़रअंदाज़ न करते हुए हमारा यह विश्वास है कि सारे प्रयासों की कुंजी हमारी व्यक्तिगत संवेदनशीलता व प्रयासों में है।

शुभकामनाओं सहित

ज्यूरी :
श्री अरुण कुमार 'पानीबाबा'
श्री सी.के. गांगुली 'बबलू'
सुश्री कमला भसीन
श्री ओम जोशी
न्यायमूर्ति श्री पानाचंद जैन
श्री राजेन्द्र भानावत
डॉ. सुमन सहाय
न्यायमूर्ति श्री वी.एस. दवे

भूमिका

वर्षा आधारित क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन पर जन-सुनवाई

यह जन-सुनवाई नागरिक समाज संस्थाओं का एक सम्मिलित प्रयास है। ऑक्सफेम के सहयोग से की जाने वाली यह जन-सुनवाई वर्षा आधारित राज्यों/क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर साक्ष्य/टेस्टीमनी प्रस्तुत करेगी। ऑक्सफेम ने विभिन्न जलवायु आधारित क्षेत्रों के लिए आयोजित जन-सुनवाईयों में से एक, इस सुनवाई में 12 राज्यों (बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब एवं हरियाणा) से 350 से अधिक लोग प्रतिभागिता कर अपने राज्यों/क्षेत्रों के जन-जीवन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर चर्चा करेंगे। विभिन्न क्षेत्रों से गणमान्य नागरिकों की 'ज्यूरी' इस जनसुनवाई में प्रस्तुत किये गए साक्ष्यों के आधार पर अपना मत देगी और स्थानीय, राज्य स्तरीय, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इससे संबंधित नीति-निर्माण के लिए अपना संदेश व संस्तुति देगी। यह प्रकाशन प्रस्तुत होने वाले साक्ष्यों का संकलन है और इस उद्देश्य से प्रकाशित किया जा रहा है कि प्रतिभागियों व अन्य इच्छुक नागरिकों, संस्थाओं व सरकारों को प्रस्तुत साक्ष्यों से अवगत कराया जा सके।

जलवायु परिवर्तन : संदर्भ

जलवायु परिवर्तन इस सदी की गंभीरतम चिंताओं में से एक है। इसका प्रभाव न सिर्फ जलवायु बल्कि मानव समुदाओं के सभी क्रिया-कलापों पर होने वाला है। आई.पी.सी.सी. की चौथी रिपोर्ट के अनुसार इस सदी के अंत तक धरती की जलवायु का तापमान 2—4.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। इसके फलस्वरूप जलवायु में अप्रत्याशित परिवर्तन होंगे जिससे अनावृष्टि (अकाल) व अतिवृष्टि के अलावा कई अन्य अत्यंत गंभीर घटनाऐं घटेंगी। इसका प्रभाव कृषि व खाद्य व जल की उपलब्धता के अलावा मानव स्वास्थ्य, गरीबी, पलायन व विकास पर होगा। कुल मिलाकर यह मानें कि यह देशों की अर्थव्यवस्था की स्थिरता व विकास की गति को अवरुद्ध करने में प्रबल कारक होगा। कमजोर अर्थव्यवस्था देशों (विकासशील व गरीब) में इसके प्रभाव अधिकतम होंगे। खासकर दक्षिणपूर्व एशियाई देश, अफ्रीकी व लातिन अमरीका पर जलवायु परिवर्तन की मार सबसे ज्यादा होगी। जलवायु परिवर्तन के जनक व ग्रीन हाउस गैसों में से 80 प्रतिशत के सृजक विकसित देश भी इसके प्रभावों से अछूते नहीं रहेंगे। यह और बात है कि पैसों व तकनीकि प्रगति के कारण यह देश इस समस्या को थोड़े दिनों के लिए टाल सकते हैं।

भारत व जलवायु परिवर्तन :

भारत जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से प्रभावित होने वाले मुख्य देशों में से एक है। भारत

की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा जलवायु/वर्षा/मानसून पर आधारित कृषि का है और ऐसी आशंका है कि यह भयंकर रूप से प्रभावित होगा। सरकारी रिपोर्टों की मानें तो भारत जलवायु परिवर्तन से बहुत प्रभावित नहीं होगा। तर्क यह है कि बढ़े सेवा-क्षेत्र (Service Sector) के चलते भारत के ग्रीन हाउस उत्सर्जन में बहुत अधिक वृद्धि नहीं होगी। सरकारी भविष्यवाणियों की उपयोगिता और विश्वसनीयता से हम सभी लोग वाकिफ़ हैं। भविष्यवाणी को एक तरफ रखकर हम अपने चारों ओर देखें तो साक्ष्य चारों तरफ मौजूद हैं और आने वाले वर्षों में प्रभाव की कहानी कहते हैं।

वर्षा आधारित क्षेत्रों/राज्यों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव :

भारत की कृषि में सबसे महत्वपूर्ण योगदान मानसून आधारित वर्षा वाले राज्यों/क्षेत्रों का है। भारत की 70 प्रतिशत से अधिक कृषि योग्य भूमि वर्षा सिंचित है और खाद्यान्न उत्पादन में 60 प्रतिशत से अधिक उत्पाद इन्हीं क्षेत्रों से आता है। वर्षा व तापमान में किसी तरह का परिवर्तन इसकी उत्पादकता, खाद्य व जल सुरक्षा, गरीबी, विकास व जीवनशैली को कई तरीकों से प्रभावित कर सकता है। प्रस्तुत साक्ष्यों में यह लक्षण स्पष्ट है। जन-सुनवाई के लिए विभिन्न राज्यों से आए साक्ष्य न सिर्फ सीधे रूप से कृषि, खाद्य व जल सुरक्षा पर बल्कि परोक्ष रूप से पूरी जीवनशैली पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर प्रकाश डालते हैं।

जलवायु परिवर्तन क्या है?

लगभग सभी वर्षा आधारित क्षेत्रों से आने वाले साक्ष्यों में यह बात स्पष्ट है कि वर्षा व मानसून के चक्र में स्पष्ट परिवर्तन आया है। अधिकाधिक लोगों का यह मानना है कि जहाँ पहले वर्षा तीन से चार महीने तक होती थी, अब 15–20 दिनों में सिमट कर रह गई है। बारिश के दिनों की संख्या में भी भयानक गिरावट आई है। इससे भी बड़ी समस्या मानसून, वर्षा के अप्रत्याशित होने की है। पिछले चार-पाँच वर्षों से वर्षा अपने साधारण काल-चक्र से काफी अलग रही है जिससे कृषकों के जीवन व दिनचर्या में काफी उथल-पुथल रही है। इन क्षेत्रों में किसानों की दिनचर्या मानसून से ही संचालित रही है और उसकी अनुपस्थिति में इनके जीवन का सारा अनुशासन बिगड़ गया है। कई राज्य लगातार कई वर्षों से अनावृष्टि की चपेट में रहे हैं। इसके उलट कई अल्प वर्षा वाले क्षेत्रों में अतिवृष्टि ने काफी क्षति पहुँचाई है। राजस्थान में बाढ़ व असम में अकाल इस बात के ज्वलंत उदाहरण हैं। सबसे दुर्भाग्यपूर्व आंध्र-प्रदेश रहा जहाँ अकाल के तुरंत बाद बाढ़ ने त्रासदी मचाई।

कृषि, खाद्य व जल सुरक्षा :

मानसून/वर्षा की कमी, मौसम विभाग की अटकलें व कृषि मंत्रालय के अकुशल प्रयासों के फलस्वरूप इस वर्ष कृषि व खाद्यान्न उत्पादन में काफी गिरावट आई है। कई राज्यों में खरीफ की फसल पूरी चौपट हुई और रबी के आसार भी अच्छे नहीं हैं। जलवायु परिवर्तन के कई राज्यों में जहाँ किसान एक वर्ष में तीन से अधिक फसलें लेते थे, उनको दो फसल लेनी भी मुश्किल पड़

रही है। उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में दलहन व तिलहन बिल्कुल न के बराबर हुई है। पहले जहाँ मोटे अनाजों पर आधारित मिश्रित कृषि होती थी व रासायनिक खाद पर निर्भरता नहीं थी, वहां स्थितियाँ बिल्कुल उलट चुकी है। आज बदलती हुई कृषि प्रणालियों, रासायनिक खादों, अधिकाधिक ऊर्जा आधारित सिंचाई ने खेती की लागत कई गुना बढ़ा दी है। पिछले दस वर्षों में 250,000 से अधिक कृषक और उनके परिजन काल के गाल में समा गए हैं।

खेती की बढ़ती हुई लागत व उत्पादन में कमी ने कृषि को अलाभकारी व्यवसाय बना दिया है। निरंतर कम होती प्रतिव्यक्ति कृषि योग्य भूमि, अधिकाधिक जल की माँग वाली फसलें, नकदी फसलों का लोभ व सरकार की तरफ से कृषि विस्तार की सुविधाओं ने उत्पादक व उपभोक्ता दोनों की खाद्य सुरक्षा को अप्रतिम रूप से प्रभावित किया है। रासायनिक खाद के अधिकाधिक इस्तेमाल से जमीन की उर्वरा शक्ति घटी है। (अब घर के बाहर रखी हुई रोटी कुत्ता नहीं खाता।) जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव जल सुरक्षा पर पड़ा है। अपने पारंपरिक जल स्रोतों के रख-रखाव व प्रबंधन के प्रति हम पहले से ही उदासीन रहे हैं। वर्षा की कमी की कीमत भूजल को चुकानी पड़ी है। पंजाब व हरियाणा जैसे राज्यों में अधिकाधिक कृषि सबमर्सिबल पंपों पर ही आधारित है। कई जल के स्रोत विकास की भेंट चढ़ गए व सूखे हुए तालाबों आदि के जीर्णोद्धार की बजाय वहाँ बाजार व बिल्डिंगें बना दी गईं। नई सड़कों, कॉलोनियों व रेल-मार्ग के निर्माण में वर्षा के जल-प्रबंधन का ध्यान बिल्कुल ही नहीं रखा गया है। प्रतिफल यह है कि स्रोतों से इस्तेमाल किये गए जल की भरपाई (रिचार्ज) बिल्कुल ही नहीं हो पाता। हम प्रकृति की देने की क्षमता से कहीं ज्यादा ले रहे हैं, परिणाम भयावह हो रहे हैं व और भी भयंकर हो सकते हैं। जल संग्रहण की क्षमता बढ़ाने वाले सामुदायिक और सरकारी प्रयासों में भारी कमी आई है। कई राज्यों में जहाँ भूजल पहले 15—20 फिट पर उपलब्ध होता था, आज 100 फीट से नीचे भी नहीं है। कई राज्यों में स्थिति और भी गंभीर है और पीने के पानी का भी संकट है। शहरों में स्थिति विस्फोटक है और महानगरों में झुग्गियों में रहने वाले गरीबों को पानी पर मध्यमवर्गीय परिवार की अपेक्षा कई गुना ज्यादा पैसा खर्च करके पानी मिलता है। अब पानी की बोतलों ने गाँवों का रुख किया है।

वनक्षेत्र, वानिकी व जैव विविधता पर प्रभाव :

जलवायु परिवर्तन व उससे उत्पन्न प्रभावों से वनक्षेत्र, वानिकी व जैव विविधता में भयंकर ह्रास हुआ है। गाँवों से जंगल की दूरी बढ़ती गई है और उनकी अर्थव्यवस्था में जंगल/वनक्षेत्रों का योगदान न्यूनतम होता जा रहा है। वनाश्रित समुदायों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और वे पलायन को मजबूर हुए हैं। वनों से कई वानिकी व जैव प्रजातियाँ लुप्त हो गई हैं और कई विलुप्त होने के कगार पर हैं। वनों में भोजन व जल की अनुपलब्धता के कारण गाँवों की तरफ भटके जानवरों ने लागों को और लोगों ने जानवरों को परस्पर शिकार बनाया है। गाँवों में भी सियार, गीदड़, कई पशु-पक्षी व कीट गायब हो गए हैं। मृतक जानवरों को खाने वाले पशु व कीट भी गायब हो रहे हैं।

गरीबी व पलायन :

खेती के अलाभकारी होने से, ऋण चुका पाने की असमर्थता से और खेती में कमी होने से कई छोटे किसान भूमिहीन होकर पलायन को मजबूर हुए हैं। भूमिहीन किसानों व मजदूरों के पास पलायन के सिवा कोई चारा नहीं रहा है। कई गाँवों मे तकरीबन सभी ग्रामीण भारी ऋण के तले दबे हुए हैं। पलायन कर शहरों में अमानवीय मजदूरी करने व नारकीय जीवन से उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अब पुरुषों के साथ बच्चों व महिलाओं का पलायन भी आम बात है। बच्चों व महिलाओं को कई प्रकार के शोषण से गुजरना पड़ता है। कई परिवार पलायन से छिन्न-भिन्न हो गए हैं। पीछे छूटे वृद्ध माता-पिता मजदूरी कर अपना चूल्हा जलाने का विवश है। बढ़ती हुई प्रति व्यक्ति आय के आंकड़ों से उलट कृषि के बढ़ते खर्च, उत्पादकता के ह्रास व पलायन ने गाँवों में गरीबी को कई गुना बढ़ाया है। कृषि न होने से गाँव में रोज़गार के अवसर बिल्कुल ही समाप्त हो गए हैं। कई ऐसे समुदाय हैं जो कि भूखे रह सकते हैं लेकिन नरेगा में मिट्टी काटना उनके लिए उनकी संस्कृति को मान्य नहीं है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव :

जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव यूँ तो अभी स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं हो पाया है लेकिन समुचित भोजन की कमी से गिरती हुई प्रतिरोधक क्षमता ने रोगों में भयंकर बढ़ोत्तरी की है। लगभग सभी राज्यों में बच्चों और महिलओं में कुपोषण की दशा पर कई आंकड़े उपलब्ध हैं। सरकार के न मानने के बावजूद भी कई राज्यों में गरीबी से उपजी भूख से मौतें हुई हैं और हो रही हैं। बाढ़ प्रभावित राज्यों के स्वास्थ्य की स्थिति प्रदूषित पानी द्वारा फैलने वाली बीमारियों की वजह से और भी गंभीर है। सूखे राज्यों में भी भूजल की गुणवत्ता गिरी है। कई राज्यों में पानी में आर्सेनिक की मात्रा स्वास्थ्य की दृष्टि से असह्य है। इसके अतिरिक्त अत्यंत गंभर घटनाओं से हुई मौतों का अंदाज़ा सहज लगाया जा सकता है। हर वर्ष गर्मियों में लू से मरने वालों की गिनती व सर्दियों में ठण्ड से मरने वालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। धन के अभाव में व स्वास्थ्य सुविध ाओं के अभाव में इलाज न कराने से हुई मौतें सरकारी आंकड़ों से बाहर ही हैं।

पशुधन पर प्रभाव :

पशुधन का भारत में कृषि, व्यवसाय व घर के कार्यों में बड़ा योगदान रहा है। बदलते हुए मौसम, कृषि में आई कमी का सीधा प्रभाव पशुधन पर पड़ा है। कम होती हुई चारागाह की भूमि और चारे के कम होते उत्पादन ने पशुधन को घर की शान की जगह किसानों की व्यथा बना दिया है। पशुओं को पर्याप्त रूप से चारा नहीं मिल पा रहा है। रासायनिक खाद व कीटनाशकों के इस्तेमाल से चारा भी जहरीला हो रहा है। बढ़ते तापमान ने पशुओं के स्वास्थ्य को भी प्रभावित किया है। पशु अब प्रायः बीमार ही रहते हैं और कम आयु में ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। पशुधन से आय की कमी से किसानों पर दोहरी मार पड़ी है। किसान औने-पौने दाम पर पशुओं को बेचने को मजबूर

हैं। गाँवों में एक चौथाई जानवर भी नहीं बचे हैं।

महिलाओं पर प्रभाव :

जलवायु परिवर्तन के महिलाओं पर बहुआयामी प्रभाव हुए हैं। परिवारों में खेती, भोजन व जल, ऊर्जा व जलावन की जिम्मेदारी अधिकांशतः महिलाओं की ही है। खेती व पारिवारिक आय में कमी, भोजन व जल व ऊर्जा के स्रोतों में कमी की पूर्ति में महिलाओं को अपनी दिनचर्या का एक महत्वपूर्ण भाग इनके पीछे दौड़ने में बीतता है। घरों से दूर होते हुए जल स्रोत महिलाओं के समय व श्रम के लिए बड़ी चुनौती पेश करते हैं। स्वास्थ्य की देखरेख में भी काफी समय बीतता है। पारिवारिक आय में कमी के कई सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक परिणाम महिलाओं पर ही परिलक्षित होते हैं। पलायन करने वाली महिलाओं की स्थिति और भी बदतर है। दुर्बल, एकल महिलाओं की स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। जिन परिवारों में पुरुष वृद्ध महिलाओं को गाँवों में छोड़ मजदूरी को गए हैं, उनके लिए अन्य सभी समस्याओं के साथ सुरक्षा भी एक बड़ा मुद्दा है।

उपसंहार :

यद्यपि प्रस्तुति में आए साक्ष्यों का स्पष्टीकरण वैज्ञानिक रूप से संभव है लेकिन समय व संसाधन की सीमाओं में लभ्य नहीं है। इन प्रस्तुतियों का मुख्य उद्देश्य समाज व सरकार का ध्यान उन मुद्दों की तरफ आकर्षित करना है जिससे जीवन व अर्थ व्यवस्था कई तरह से प्रभावित हुई है। स्पष्ट संदेश है कि अगर जल्दी सुधारात्मक प्रयास नहीं किए गए तो स्थिति और भी बदतर होती जाएगी। इन सब साक्ष्यों के उलट ऐसे भी कई उदाहरण हैं जहाँ लोगों ने अपनी आवश्यकताओं को नैसर्गिक और प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर सीमित रखा है। आपनी जीवनशैली में अपने आसपास की जलवायु के साथ प्राकृतिक अनुकूलन करके इस समुदाय ने परिवर्तन के प्रभावों को प्रलयंकारी होने से बचाकर रखा है। भारत में ऐसे समुदायों की गिनती असंख्य है जिनका जीवन न केवल न्यूनतम ऊर्जा, जल, संसाधनों की मांग पर आधारित है बल्कि उन्होंने इन संसाधनों के सफल प्रबंधन व न्यूनतम खपत से जलवायु परिवर्तन के खिलाफ किए गए प्रयासों में अमूल्य योगदान दिया है। अगर ऐसे प्रयासों का सम्मान कर उनका संकलन, प्रचार व अनुकरण किया जाए तो भारत विश्व के अग्रणी देशों में होगा।

बिहार

नाम : नलिनीकांत

1

उम्र : 45 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : ग्राम-कोइलख, प्रखंड-राजनगर, जिला-मधुबनी (बिहार)

जलवायु परिवर्तन का हमारी संस्कृति पर प्रभाव

मैं नलिनीकांत, गाँव कोइलख, प्रखंड राजनगर, जिला मधुबनी का निवासी हूँ। करीब दो हजार परिवारों का यह गाँव मिथिला का एक प्रसिद्ध गाँव माना जाता है। मेरे पिताजी का निधन वर्ष 1983 में हो गया था, अतः सात बीघे की खेती का परिवार के पाँच लोगों (तीन भाई बहन, माँ, दादी) के गुजर-बसर, पढ़ाई आदि में महत्वपूर्ण योगदान रहा। खाने के अन्न के अलावा हम सब धान, आम, तिलहन, आदि बेचा भी करते थे, जिससे परिवार का अन्य खर्च चलता था। ब्राह्मण के अलावा पिछड़ी जाति (धानुक, केवट, बढ़ई, लोहार, माली आदि), हरिजन और मुस्लिम लोग इस गाँव में निवास करते हैं। कुछ लोग भूमिहीन भी हैं, जो बटाई या मजदूरी कर अपना गुजर-बसर करते थे।

विगत एक-डेढ़ दशक से हमारे गाँव में भी ऋतु परिवर्तन का असर स्पष्ट रूप से दिखने लगा है। अप्रत्याशित एवं अनियमित वर्षा, अप्रत्याशित गर्मी, लम्बे समय तक कुहासा, अत्यधिक ठण्ड या बहुत कम ठण्ड की घटना काफी बढ़ी है। जब पुरवा हवा चलना चाहिए तब पछवा (पश्चिम दिशा की हवा) चलने लगती है और जब पछवा चलना चाहिए तब पुरवा (पूर्व दिशा की हवा) चलने लगती है। पहले किसान नक्षत्रों के अनुसार अपनी खेती की प्लानिंग करते थे, अब धीरे-धीरे इस प्रकार की गणना अप्रासंगिक हो गई है। गाँव में कई किसान हैं जो खेती से जुड़े घाघ-भट्टरी की लोकोक्तियाँ आपको जुबानी सुना सकते हैं परन्तु अब ये सारे मुहावरे, लोकोक्ति अप्रासंगिक हो गए हैं। धीरे-धीरे कई त्यौहार भी अर्थहीन होते जा रहे हैं। नवान्न में नया चूड़ा/चावल खाने की परिपाटी हमारे गाँव में रही है परन्तु अब नवान्न के समय में धान तैयार हो नहीं पाता है। मकर-संक्रान्ति तक अगहनी फसल का सारा कार्य समाप्त हो जाता था और किसान उसके बाद किसी तीर्थस्थल जाने की तैयारी (अमूमन देवघर, वासुकीनाथ) करते थे। अब कृषि कार्य समाप्त होने में काफी विलम्ब हो जाता है। एक त्यौहार होता है - जूड़-शीतल। बिहार के अन्य हिस्सों में इसे सतुआनी भी कहा जाता है। यह त्यौहार गर्मी के मौसम का आगाज़ करता है और साथ ही आम के पेड़ में फल लगने लगते हैं। परन्तु अब दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि इस त्यौहार तक गर्मी आ ही जाएगी और आम के पौधों में फल लग ही जाएँगे। पहले इस त्यौहार के दिन गाँव के तालाबों की सफाई/

उड़ाही (गाद को निकालने का काम) की जाती थी ताकि बरसात में तालाब की जल संग्रहण क्षमता बढ़े और तालाब उथला न हो। यह कार्य तब संभव है जब तालाब सूखने के कगार पर हों या पानी काफी कम हो। अब वर्षों से यह कार्य संभव नहीं हो पा रहा है। बरसात के मौसम में जब मेघ रूठ जाता था और बारिश नहीं होती थी, तब हमारे गाँव की महिलाऐं/किशोरियाँ रात में मेघ को लुभाने के लिए ''जटा-जटीन'' का खेल खेला करती थीं और मेघ इनके गीतों/नृत्यों से प्रसन्न हो बरसने लगता था। पर अब अक्सर ''जटा-जटीन'' का खेल खेलने वाली किशोरियों को निराश होना पड़ता है। पुत्र के दीर्घायु होने की कामना के लिए माँ जितीया पर्व किया करती हैं। पर्व के दौरान मरुआ की रोटी और इचना मछली सुहागिन महिलाऐं खाया करती हैं। अब हमारे गाँव में न तो मरुआ मिलता है और न ही इचना मछली। अब लोग किसी तरह शहर जाकर इन चीजों का जुगाड़ करते हैं। छठ पर्व के बाद आँवला पेड़ के नीचे बड़े ही धूमधाम से अक्षय नवमी मनाने की परिपाटी गाँव में रही है। आँवला के पौधे के नीचे साफ कर, गोबर से लेप कर भोजन बनाया जाता था और परिजनों को खिलाया जाता था। इस भोजन में आँवला की चटनी का होना आवश्यक माना जाता था पर अब आवश्यक नहीं है कि आपके आँवला के पेड़ में तक तक फल लग ही जाए।

हमारे गाँव समेत पूरा मिथिला क्षेत्र धान, पान, मखान, आम आदि के लिए काफी प्रसिद्ध रहा है। पहले हमारे गाँव में धान की काफी प्रजातियाँ थीं। वस्तुतः किसान की प्रसिद्धि उसके पास उपलब्ध बीज से होती थी। बीज विनिमय की भी परिपाटी पड़ोसी गाँवों से थी। बेटी-पतोहू के ससुराल और मायके जाते समय आँचल में धान, हल्दी, सुपारी, दूर्वादल देने की परिपाटी थी। अन्य गाँवों के किसानों की तरह मेरे गाँव के किसान भी कृषि विभाग, कृषि वैज्ञानिक के बहकावे में आए और अपने पारम्परिक बीज को छोड़कर संकर बीज/बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का बीज अपनाया। अंततः धान की फसल की लागत बढ़ी और अपना पारम्परिक बीज भी हाथ से गया। उल्टा नया तथा कथित उन्नत बीज कई प्रकार की बीमारियाँ भी साथ लाया है। प्रत्येक वर्ष नई-नई किस्म की बीमारियों का उदय होता है, जिसको ठीक करना स्थानीय किसानों के वश का नहीं होता। कुछ वर्ष तो कुछ नयी धान की प्रजातियों में फसल ही नहीं हुई। कुछ वर्ष तक मकई (मोनसेन्टो के बीज) की फसल में पैदावार ही नहीं हुई, अन्ततः किसानों ने इसकी फसल करना ही छोड़ दी।

गाँव में अधिकांश किसानों के पास आम के छोटे-बड़े बगीचे थे। कलमी के बजाय किसान बिज्जू (स्थानीय प्रजाति) आम के पौधे अपने ज्ञान और कौशल से विकसित कर बगीचे में लगाया करते थे। विगत दशकों में एक ओर जहाँ आम के मंजरों में कीट का प्रकोप बढ़ने लगा वहीं कृषि वैज्ञानिकों ने किसान को बाजार के लिए कलमी आम लगाने की सलाह दी। अंततः बाप-पुरखों द्वारा लगाया गया बिज्जू आम का पेड़ कटने लगा। बिज्जू आम के विलोप का सीधा असर गरीब मजदूरों पर पड़ा है। आम की फसल के उत्तरार्द्ध में धान की रोपाई शुरू हो जाती है। कहते हैं कि धान की रोपाई में सबसे अधिक मेहनत बैल और मजदूर की होती है। पहले जब मजदूर धान की रोपाई कर लौटते थे तो रास्ते के बगीचे में गिरे आम को चुनने का अधिकार उन्हें होता था। कलमी आम लगने से अब किसान किसी पराये को अपने बगीचे में प्रवेश नहीं करने देते हैं। आम के अतिरिक्त

इस मौसम में मजदूरों को भोजन में शकरकंद और मरुआ की रोटी मिल जाती थी। पुनः धान की रोपनी के दौरान खेत में पर्याप्त मात्रा में केकड़ा और काली मछली मिल जाती थी। ये सारी चीजें काफी पौष्टिक थीं और मजदूरों का स्वास्थ्य ठीक रहता था।

जलवायु परिवर्तन का स्पष्ट असर हमारे गाँव समेत पूरे उत्तर बिहार के शीशम के पेड़ पर पड़ा है। पहले इस क्षेत्र के अधिकांश गाँवों में आपको सौ वर्ष या उससे पुराना शीशम का पेड़ मिल जाता। विगत एक-डेढ़ दशक में व्यापक पैमाने पर शीशम वृक्ष स्वतः सूखने लगे हैं और जलावन, इमारती लकड़ी का भयंकर संकट उत्पन्न हो गया है।

पान की खेती पूरी संवेदनशीलता और लगन से होती है। खेत में थोड़ी भी गंदगी होने पर फसल नष्ट होने का डर रहता है। अत्यधिक कुहासा होने पर पान, आलू की फसल नष्ट होने का डर रहता है। विगत कुछ वर्षों से जाड़े में लम्बी अवधि तक कुहासा छाने लगा है। फलतः पान की फसल नष्ट होने की काफी संभावना रहती है। इसी का परिणाम है कि मिथिला में भी बाहर के पान के पत्ते की बिक्री होने लगी है। ठीक इसी प्रकार किसान बड़े ही शौक से पहाड़ी आलू की प्रजाति खेतों में लगाते थे, जिसकी पैदावार को भी कुहासे ने प्रभावित किया है।

हमारे गाँव में तीस से ज्यादा तालाब होंगे। प्रत्येक तालाब एक दूसरे से जुड़ा था। उत्तर दिशा से वर्षा का जल प्रवेश करता था और दक्षिण दिशा में निकास रखा जाता था। बरसात के मौसम में मछलियाँ प्रजनन हेतु तालाबों में पहुँच जाती थीं। अतः मछली के बीज बाहर से तालाब में डालने की परिपाटी कम थी। एक-डेढ़ सौ से ज्यादा मछलियों की प्रजाति हमारे गाँव में भी मौजूद थी, काली मछलियाँ काफी सस्ती थीं और गरीबों के लिए सहज उपलब्ध थीं। विगत एक-डेढ़ दशक से मछली में अल्सर नामक बीमारी का प्रकोप काफी बढ़ा है और काफी संख्या में मछलियाँ मरी हैं। पुनः सरकार द्वारा पारम्परिक मछलियों को बचाने/बढ़ाने के बजाय बाहरी प्रजाति की मछलियों को बढ़ावा दिया जा रहा है जो पूरे तौर पर स्वादहीन हैं और बाजार-केन्द्रित हैं। मखाना की खेती भी जलवायु परिवर्तन के कारण प्रभावित हुई है। तरह-तरह की नयी बीमारी के कारण किसानों ने इसकी खेती करना छोड़ दिया है। अब कोजगरा (यह त्यौहार नवविवाहित लड़के के घर मनाया जाता है और मखाना परिजनों के बीच बाँटा जाता है।) के दौरान भी मखाना हमारे गाँव में बाजार से खरीदा जाता है।

इन तमाम खाद्यान्न संकटों के बावजूद सरकार और इसकी नीति, जलवायु संकट को कम करने के बजाय और विकराल बनाने में लगी है। हमारे गाँव समेत पूरे देश में बागवानी मिशन कार्यरत है। बागवानी मिशन के तहत कलमी आम के वृक्षों को बढ़ावा दिया जाता है, वह भी मात्र कुछ खास प्रजाति को। ठीक इसी प्रकार 'आत्मा' बाहरी बीजों को लाने का लगातार प्रयास करती रहती है। सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम - अन्त्योदय योजना, अन्नपूर्णा योजना, वृद्धावस्था पेंशन, पी.डी.एस. आदि का लाभ लोगों को नियमित रूप से नहीं मिल पाता है। पहले हमारे गाँव के मजदूर मजदूरी करने पंजाब, हरयाणा नहीं जाते थे, अब बड़े पैमाने पर जाने लगे हैं।

नाम : बलीराम

उम्र : 60 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : ग्राम-निनावली, ब्लॉक-रामपुरा, जिला-जालौन (उत्तरप्रदेश)

2

पलायन के अलावा और कोई रास्ता नहीं

मेरा नाम बलीराम उम्र 60 वर्ष है तथा मैं ग्राम निनावली ब्लॉक रामपुरा जिला जालौन का रहने वाला हूँ। मेरे पास पाँच बीघा कृषि भूमि है जो वर्षा के ऊपर आश्रित है। मेरे परिवार में पाँच सदस्य हैं। हमारा गाँव पहूंज नदी के किनारे बसे होने के कारण भूमि कटाव से प्रभावित है तथा गाँव के आस-पास गहरा बीहड़ है। ऊँची-नीची तथा असिंचित जमीन होने के बावजूद भी आज से 20—25 वर्ष पहले हमारी रोजी-रोटी खेती तथा पशुपालन के द्वारा आसानी से चल जाती थी। वर्षा ऋतु में खूब वर्षा होती थी तथा रबी व खरीफ की दोनों फसलें ले लेते थे। वर्षा, सर्दी, गर्मी की तीनों ऋतुऐं मौसम के अनुसार होती थीं। लेकिन पिछले करीब 18 सालों से हमारे क्षेत्र में मौसम में बड़ा बदलाव होता जा रहा है।

मौसम में होने वाले बदलाव के कारण वर्षा ऋतु में जहां 3—4 महीने वर्षा हुआ करती थी, वहीं पर अब पूरे वर्ष में मात्र 10—15 दिन ही बड़ी मुश्किल से पानी बरसता है। पिछले 15 वर्षों में 10 बार सूखा पड़ चुका है। पिछले 5 सालों से हमारे क्षेत्र में लगातार सूखे की स्थिति बनी हुई है। जिस कारण खेती करना हम सब किसानों के लिए बहुत मुश्किल भरा कार्य हो गया है। जिससे मेरे तथा गाँव के अधिकांश परिवारों के सामने खाने की समस्या तथा पानी की कमी और पशुओं के लिए चारा एवं पानी की समस्या से जूझना पड़ रहा है। रोजी-रोटी की तलाश में हमारे गाँव के ६० प्रतिशत परिवार शहरों की ओर पलायन करने को विवश हो रहे हैं।

गाँव के तालाब व कुँए सूखे पड़े हैं। हम किसान लोग मेहनत कर खेतों को तैयार करते हैं, लेकिन क्वार माह में वर्षा न होने के कारण वर्षा आधारित खेती की बुवाई नहीं हो पाती है। किसी तरीके से कुँआ व ट्यूबवैल से सिंचाई कर जो थोड़ी बहुत खेती में बुवाई कर पाते हैं, उसमें भी पैदावार बहुत कम हो पाती है। जिसका प्रमुख कारण है कि फरवरी माह में ही हमारे क्षेत्र में तापमान बढ़ने लगता है तथा गर्मी के कारण फसल अपने समय से पहले ही पक जाती है। फसलों में कीड़ों का प्रकोप बहुत बढ़ रहा है, जिससे पैदावार बहुत कम ही हो पाती है। किसानी लगातार रूप से घाटे का सौदा बनती जा रही है। कई छोटे किसान खेती छोड़कर मजदूरी करने के लिए

शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। हमारे क्षेत्र की जलवायु एवं मौसम बहुत तेजी के साथ बदल रहा है। वर्षा ऋतु में वर्षा नहीं होती है और जब वर्षा होती भी है तो बेमौसम या इतनी तेजी के साथ होती है कि फसल को भारी नुकसान होता है। सर्दी के मौसम में जहां 4 माह खूब सर्दी पड़ती थी वहीं अब 2 महीने (दिसम्बर, जनवरी) में ही सर्दी पड़ती है। इन दो महीनों में कुहरा एवं पाला के द्वारा फसलों को प्रतिवर्ष बहुत नुकसान होता है। गर्मी के दिनों में तापमान लगातार रूप से बढ़ रहा है, जिससे फसलों के नुकसान के साथ-साथ पीने के पानी की समस्या बढ़ती जा रही है। गर्मी के दिनों में तालाब व कुँए सूख जाते हैं तथा गाँव के आधे से ज्यादा हैण्डपम्प पानी देना बन्द कर देते हैं, जिससे पीने के लिए पानी बड़ी मुश्किल से दूर से लाना पड़ रहा है।

पहले हमारे गाँव के सभी परिवारों के द्वारा पशुपालन (गाय, भैंस, बैल) किया जाता था तथा दुधारू पशुओं से दूध बेचकर परिवार की आजीविका चलाने में बड़ी मदद मिल जाती थी। लेकिन क्षेत्र में लगातार रूप से पड़ने वाले सूखे के कारण पशुओं के लिए पानी तथा चारे की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। पशु चारा, भूसा आदि बड़ी मुश्किल से 300–400 रुपये प्रति क्विंटल की दर से मध्य प्रदेश से लाना पड़ता है। गरीबी के कारण अधिकांश परिवारों की भूसा खरीदने की सामर्थ्य नहीं रही है जिसके कारण हम लोगों ने जानवर रखने बहुत कम कर दिये हैं। कई लोगों के द्वारा अपने जानवरों को जंगल में जाकर यूं ही छोड़ दिया गया है। पशुपालन न कर पाना भी हमारी आजीविका और जीवन शैली को प्रभावित करता है, जिसकी वजह से हम सभी भरपेट भोजन का सेवन नहीं कर पाते हैं और हमारे बच्चों एवं महिलाओं में खून की कमी हो रही है। रोजी-रोटी की तलाश में मेरे दोनों लड़के सूरत में पलायन कर मजदूरी कर रहे हैं। पलायन करने हेतु हमने 1000 रुपये का इंतजाम किया। हमारे गाँव के करीब 60 प्रतिशत घरों के लड़के बाहर जाकर मजदूरी कर रहे हैं। घर खाली पड़े हुये हैं। पलायन हालांकि आमदनी के हिसाब से लाभप्रद दिखता है परन्तु पलायन के दौरान रहने, खाने-पीने की आपूर्ति नहीं हो पाती है, जिसके कारण हमारे दोनों बच्चों का स्वास्थ्य बिगड़ गया और हम लोगों को उनके स्वास्थ्य लाभ पर अलग से खर्चा करना पड़ा। सरकारी योजना नरेगा आदि का लाभ नहीं मिल रहा है। काम मांगने पर काम मिलता नहीं है। परिवार चलाने के लिए सेठ-साहूकारों से कर्जा लेना पड़ता है और कर्ज का स्वरूप व तरीका भी हमारे जीवन में एक प्रकार का शोषण ही है। मैंने पाँच साल पहले 3000 रुपये कर्जा खेती व खाने के लिये गाँव के लम्बरदार से 5 रुपये सैकड़ा प्रतिमाह की दर से लिया गया था। अब वह बढ़कर 6000 रुपये से ज्यादा हो गया है। कर्जा नहीं पटा पा रहे हैं, जिससे चार बातें रोज सुननी पड़ रही हैं। समझ में नहीं आता है कि इस स्थिति में क्या करें और क्या न करें। इस साल भी वर्षा की कमी के कारण फसल नहीं बो पाई। खाने के लिये बड़ी समस्या है। गाँव में काम मिल नहीं रहा है। न तो घर में खाने को अनाज है और न बोने के लिये बीज। कर्जा भी नहीं मिल रहा है। इसलिये हमने सोच लिया है कि हम भी गाँव छोड़कर मजदूरी के लिये बाहर चले जाएंगे। कम से कम पेट तो भर सकेंगे।

नाम : ज्ञानेन्द्र कुमार तिवारी
उम्र : 32 वर्ष
व्यवसाय : किसान/कार्यकर्ता
पता : जिला-पन्ना (मध्यप्रदेश)

3

मौसम परिवर्तन से आजीविका में बदलाव के अनुभव

मध्यप्रदेश का पन्ना जिला ग़रीबी में दूसरे स्थान पर गिना जाता है। पन्ना जिले में प्राकृतिक सम्पदा का भण्डार है। यहाँ जंगल और प्राकृतिक रूप से हीरा का भण्डार है। यहाँ के लोगों का जीवन-यापन जंगलों पर निर्भर रहता था और कुछ लोग हीरा उत्खनन का कार्य करते थे। इस तरह लोगों की आजीविका चलती थी।

ग्राम पंचायत पाठा का आश्रित गांव रायपुर टपरिया जिले से लगभग 50 किलोमीटर एवं जनपद से 15 किलोमीटर दूर मैकल पहाड़ियों से घिरा हुआ आदिवासी बाहुल्य गाँव है। यहाँ के लोगों की आजीविका का साधन कृषि, कृषि मजदूरी, जानवरों से आमदनी एवं जंगलों पर निर्भरता है। विगत सात-आठ वर्षों में वर्षा कम होने के कारण इनके आजीविका के साधनों में बदलाव आया है इस पर गाँव के गोरेलाल कोदर, मलखान कोदर, रामकेश, दशरथ और अन्य लोगों से सामूहिक चर्चा से जो तथ्य निकले हैं, उन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है -

वर्षा का स्तर कम हुआ है : लगभग 5 से 10 वर्ष पहले तीन से चार माह वर्षा होती थी साथ ही 10–10 दिन तक पानी नहीं निकलता था। मघा और हथिया नक्षत्र में जो पानी गिरता था उससे रबी और खरीफ दोनों फसलों को फायदा होता था। आज के समय में मुश्किल से एक माह भी वर्षा नहीं हो पा रही है। औसतन वर्षा की मात्रा कम हुई है, साथ ही वर्षा का समय भी बदला है। पहले जून (आषाढ) में वर्षा होती थी अब जुलाई में भी वर्षा नहीं होती है। चौमासा शब्द अब सभी भूल गए हैं।

फसलों के उत्पादन और किस्मों मे परिवर्तन : मौसम में परिवर्तन के कारण जो उत्पादन पहले होता था, अब नहीं हो रहा है। कुँए का पानी देने से भी उसके उत्पादन में कमी आई है। जैसे धान की फसल को जिस तरह की जलवायु चाहिए वह नहीं मिल रही है, गर्मी ज्यादा होने के कारण उत्पादन एवं पौधे की वृद्धि भी रुक गई है। पहले जिस खेत में पानी महीने मे एक बार देना पड़ता था अब दूसरे ही दिन देना पड़ रहा है, जिसकी वजह से कम पानी वाली फसलें तिल,

उड़द, ज्वार, सामा, काकुन बोने के लिए लोग मजबूर हैं। जिसे लोगों ने खाने में उपयोग करना बन्द कर दिया था अब फिर से चालू कर दिया है। धान की फसल दो-तीन वर्षों से लोगों ने करना बन्द कर दिया है।

कार्य और व्यवसाय में बदलाव : जो लोग अपनी खेती का कार्य करते थे, इसके अलावा कोई और काम नहीं करते थे, अब वे मजदूरी करने के लिए मजबूर हैं। गोरे लाल ने बताया कि हमने जीवन भर खेती का काम किया है कभी मजदूरी नहीं की, अब लकड़ी बेच कर अपनी आजीविका चला रहा हूँ। अधिकांश लोग गाँव से बाहर सूरत, हरयाणा, दिल्ली में जाकर कपड़ा मिल, मोटर साइकिल की फैक्ट्री में काम करने जैसा व्यवसाय चुनने के लिए मजबूर हैं। वर्तमान में इस गाँव में अधिकांश लोग जंगल से लकड़ी काटकर बेच रहे हैं, जबकि तीन वर्ष पहले मुश्किल से 5 प्रतिशत लोग ही लकड़ी का व्यवसाय करते थे। सभी दूध और खेती का व्यवसाय कर रहे थे।

आजीविका के प्राकृतिक संसाधन में बदलाव : गाँव के लोग अधिकांश माहों मे जंगलो से अपनी आजिविका चलाते थे, जो अब नहीं है। गाँव में जो तेंदूपत्ता का फड़ लगता था उसमें 8 से 10 लाख गड्डी पत्ता निकलता था अब मात्र 1.5 लाख गडडी पत्ता ही निकलता है। जंगल से तेंदू पत्ता गायब हो रहा है। आंवला दशहरा के बाद खाने के काम में आ जाता था अब आंवले में फल ही नहीं लग रहे हैं, जंगल में आंवला देखने को नहीं मिल रहा है। फल के अलावा इनके समय में भी परिवर्तन आया है। पहले आंवला अक्टूबर में होता था अब नहीं हो पाता है। महुआ मार्च-अप्रैल मे गिरता था अब नवम्बर-दिसम्बर में फल देने लगा है। गर्मी के कारण समय में परिवर्तन आया है। चिरौंजी में फल लगना ही बन्द हो रहा है, अब पेड़ में फल नहीं आ रहा है। आम के पेड़ में फल लगना ही बन्द हो गया है, जो लोगों की आजीविका का साधन था।

पालतू जानवरों में कमी : गाँव में एक चौथाई जानवर भी नहीं बचे हैं। रायपुर टपरिया में कम से कम 1000 गाय, बैल, भैंस और 500 बकरी थीं। आज मुश्किल से सब मिलाकर 100–200 जानवर ही बचे हैं। दुधारू पशुओं मे कमी आई है जिससे आमदनी कम हुई है।

बरसाती कीड़े-मकोड़े : गाँव में खेती-किसानी में जो केंचुए और कीड़े बरसात में दिखते थे वे आज नहीं दिख रहे, जिससे उत्पादन घटा है। गाँव में कोई जानवर मर जाता है तो वह काफी दिन तक पड़ा रहता है कीड़े-मकोड़े उसको खाते नहीं हैं। इसका मतलब कीड़े हैं ही नहीं। खेती में सहायक कीड़े पानी के अभाव में मर गए हैं।

जंगली जानवर : जंगल में पानी न होने के कारण बहुत से जानवर पानी के लिए किसी एक स्थान पर एकत्र होते हैं जिनका शिकार आदमी कर लेता है। दशरथ ने बताया कि इस वर्ष हमारे यहाँ 100 जंगली सुअर मारकर लोगों ने खा लिये हैं। कुछ अपने से मर गए हैं। गाँव में सियार, गीदड़ दिखाई नहीं देते हैं।

जंगली औषधियाँ : हम लोग अपनी बीमारी का इलाज जंगली जड़ी-बूटी से करते थे, जो अब पानी नहीं मिल पाने के कारण लुप्त हो रही हैं। जैसे बिलाई कन्द, सफेद मूसली, भटकटइया, अगीठा, बिरौनी ये जड़ी बूटियां ताकतवर और बीमारी से बचाने वाली होती थीं जो नहीं मिल रही हैं। अब दवा लेना पड़ रहा है, जिससे खर्च और बढ़ गया है।

साहूकारी प्रथा बढ़ी है : आज इस गाँव का कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसने कर्ज न लिया हो, पूरा गाँव आज कर्ज में डूब गया है। इससे अमीर या साहूकार की अमीरी में वृद्धि हुई है।

पलायन की मजबूरी : गाँव के कुछ परिवार जो कभी गाँव से बाहर नहीं गए, वे तीन-चार वर्षों से बाहर मजदूरी के लिए जाने को मजबूर हैं। खेती करने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ रही है। पानी न होने के कारण लोग खेत में बीज नहीं डाल रहे हैं क्योंकि लोगों को दो वर्षों से कोई भी फायदा नहीं हुआ है। अब खेती से लोग निराश हो गए हैं।

जिले में लगभग 2001 से जो मैंने देखा है, उसमें ग़रीबी उन्मूलन के प्रयास काफी किये गए हैं, लेकिन मानसून की बेरुखी ने सारे प्रयासों को विफल कर दिया और आज लोग पलायन करने व अपनी परम्परागत आजीविका को बदलने के लिये मजबूर हो गए हैं। साथ ही प्राकृतिक रूप से मिला वन उपज भी धीरे-धीरे उनसे दूर होता जा रहा है और आज उनके पास मात्र गिनने के लिए महुआ, आंवला के पेड़ बचे हैं। अन्य आजीविका के साधन अब केवल कहानी के रूप में बच्चो को सुनाने के लिए बचे हैं।

गाँव के लोगों का परिवार की तरह सहयोग करने वाले, कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाले और आजिविका के साधन को सुदृढ़ करने वाले जानवर अब इनके दुश्मन बन बैठे हैं। किसान इन्हें औने-पौने दाम में कसाई के हाथ बेचने के लिए मजबूर हैं। 40–50 भैसों का झुण्ड देख कर मैं यह पूछने पर मजबूर हो गया कि ये कहाँ जा रहे हैं? जिसका जवाब बेचने वाला नहीं दे सका। सीधा मामला है कि किसान अपने सिर की बला को हटा रहा है। जो कल तक घर की शोभा, आमदनी का साधन था आज वह बोझ बन गया है।

ये सब मानसून परिवर्तन के कारण हुआ है। जब 4–5 वर्षों से पानी नहीं गिरा, जानवरों के लिये चारा-घास नहीं हो रहा तो आदमी अपनी व्यवस्था तो कहीं से कर रहा है लेकिन जानवरों के लिए कहाँ से करे! मानसून ने लोगों को विवश कर दिया अपनी दिनचर्या व पेशा बदलने के लिए। और यह हाल किसी एक गाँव का नहीं बल्कि पूरे बुन्देलखण्ड का है।

नाम : रमाशंकर गुप्ता
उम्र : 58 वर्ष
व्यवसाय : कृषि
पता : मनेन्द्रगढ़, जिला-कोरिया (छत्तीसगढ़)

4

कम होते जंगलों से बदल गया मौसम

मैं गाँव चौघरा, जिला कोरिया, छत्तीसगढ़ का निवासी हूँ। हमारे गाँव में करीब 200 परिवार रहते हैं, जिनमें से अधिकांश गोंड जाति के हैं और मुख्यतः कृषि पर आधारित हैं। कुछ परिवार कृषि मज़दूरी भी करते हैं या मनेन्द्रगढ़ शहर में जाकर नौकरी करते हैं। 10–15 परिवार ऐसे भी हैं जो अवैध रूप से लकड़ी काटकर, उनका गट्ठर बनाकर शहर में बेचते हैं।

धान का कटोरा कहे जाने वाले प्रदेश छत्तीसगढ़ में विपुल खनिज एवं वन संपदा के भण्डार हैं। यहां के साल वन अद्वित्तीय हैं। बॉक्साइड, आयरन, लाईम स्टोन एवं कोयला यहां के प्रमुख खनिज हैं। इस प्रदेश के 80 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं व आजीविका के लिए कृषि पर आश्रित हैं। लगभग 90 प्रतिशत कृषि क्षेत्र मौसमी वर्षा पर निर्भर है, जिसमें से अधिकांश क्षेत्र एक-फसली है। वर्ष के शेष समय में लोग आजीविका के लिए प्रमुख रूप से वनोत्पाद के संग्रहण एवं विक्रय से प्राप्त आय से गुजारा करते हैं। प्रमुख वन उपजों में महुआ, चिरौंजी, आंवला, हर्रा, साल बीज, माहुल पत्ता, तेंदूपत्ता, सालपत्ता, डोरी आदि प्रमुख हैं।

मेरे पिताजी कहा करते थे कि पहले गाँव से आधा कि.मी. दूर से ही जंगल शुरू हो जाया करते थे। काफी घना जंगल हुआ करता था जिसमें शेर, भालू, चीता, वनभैंसा जैसे जंगली जानवरों की बहुतायत थी। जंगल गाँव से इतना करीब था कि मेरे परिवार के एक व्यक्ति को शेर खा गया था। रात में शेर की दहाड़ घर तक सुनाई देती थी। जब मैंने होश सम्भाला तब तक जंगल 2–3 कि.मी. दूर जा चुका था। अब तो ये 10–12 कि.मी. दूर तक भी नहीं दिखता। अब जानवरों के नाम पर सियार और लकड़बग्घा जैसे छोटे जानवर ही बचे हैं।

जंगल का बड़ी तेजी से विनाश हो रहा है। मेरा अंदाजा है कि एक हफ्ते के अंदर करीब 3–4 ट्रक लकड़ी बेची जा रही है। लोगों के पास रोज़गार के साधन उपलब्ध न होने के कारण वे जंगल की लकड़ियां बेचकर अपना गुजारा कर रहे हैं। इन लकड़ियों की पास के शहर में काफी मांग है। शहरी ग़रीब परिवार इन्हीं लकड़ियों पर आश्रित हैं, उनकी क्षमता गैस इस्तेमाल करने की

नहीं है और वह काफी महँगा भी पड़ता है।

हमारे गाँववासियों ने यह महसूस किया है कि जंगल कट जाने के कारण वन क्षेत्र में काफी कमी आई है, जिसके कारण मौसम में काफी बदलाव देखने को मिल रहे हैं। इसका असर कृषि उत्पादन, वनोपज व जीवनचर्या में देखा जा सकता है। मैंने यहाँ आने से पहले गाँव के कुछ और किसानों से बात-चीत की। मैंने जिन किसानों से बात-चीत की उनके नाम हैं - श्री पुष्कर तिवारी (48 वर्ष), श्री संतधारी सिंह (60 वर्ष), श्री कोमल सिंह (45 वर्ष), श्री तनेन्द्र सिंह (48 वर्ष), श्री नन्दलाल सिंह (52 वर्ष) और श्री दलप्रताप सिंह (65 वर्ष)।

लगातार कई वर्षों से मौसम की अनिश्चितता और तापक्रम में वृद्धि देखी जा रही है। अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि दोनों ही स्थितियों में फसलों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ने से कृषि जोखिमपूर्ण हो गई है। फसलों पर कीट व्याधियों का आक्रमण बढ़ गया है। इस कारण से लागत बढ़ गई है और आय पर विपरीत असर पड़ा है। इस वर्ष सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ सूखे से प्रभावित है। भूमिगत जल स्तर में अभी से गिरावट दर्ज की जा रही है। पहले जिन कुँओं से सिंचाई की जाती थी अब उनमें से सिर्फ पीने का पानी ही मिल पा रहा है। दूसरे कुँए तो बिल्कुल सूख चुके हैं।

इस साल वर्षा बहुत कम हुई व देर से हुई। इसके कारण सूखी बोआई तो बिल्कुल नहीं हो पाई, बतर बोनी थोड़ी बहुत कर पाए और रोपा तो नाम मात्र का हुआ। 40 प्रतिशत खेत तो खाली रह गए। जब तक पानी गिरा तब तक बोआई का समय निकल चुका था। मानसून पूर्व बारिश तो हुई ही नहीं लोग खेत कैसे तैयार करते। मुझे इस बात का आभास पहले ही हो गया था इसलिए मैंने इस साल खेती नहीं की। पूस के महीने में अगर पुरवैया ठीक से नहीं चले तो पता लग जाता है कि आषाढ़ में पानी नहीं गिरेगा। जिन किसानों ने दीर्घ अवधि वाले धान की फसल बोई है उनकी फसल अभी भी हरी है और अक्टूबर के दूसरे सप्ताह से फूल आने शुरू हुए हैं। हम किसानों की आशंका है कि खरीफ में देरी और वर्षा में कमी के कारण रबी की फसल का बहुत बुरा हाल होने वाला है।

मौसम में बदलाव और तापक्रम में वृद्धि के कारण फसलों पर कीट व्याधियों का आक्रमण बढ़ गया है। आजकल फौजी कीट (Army Worm) का प्रकोप काफी बढ़ गया है। पहले ये कभी-कभार किसी वर्ष में दिखते थे। अब मौसम इनके अनुकूल होने के कारण फसलों को ये भारी नुकसान पहुँचाते हैं। खुद मेरे खेत में कुछ साल पहले इनके आक्रमण से 100 क्विंटल धान नष्ट हो गई थी।

मौसम में आए बदलाव के कारण पिछले कुछ वर्षों से तेज हवा, आँधी-तूफान, ओलावृष्टि आदि की सक्रियता बढ़ गई है। अब प्रतिवर्ष तथा वर्ष में कई बार भी ऐसी आपदाओं से कृषि क्षेत्र एवं वन क्षेत्र के अलावा ग्रामीण ग़रीबों के मकानों की छतों एवं खपरों के उड़ जाने या टूट जाने से भारी आर्थिक क्षति होती है। इसकी भरपाई करने में लम्बा समय, धन एवं श्रम व्यय होता है।

आय में कमी से ग्रामीण आबादी के पारिवारिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों एवं परम्पराओं तथा विवाह, जन्म, मरण, त्यौहार, रीति-रिवाजों का पालन आदि का निर्वाह करने के लिए कर्ज लेना पड़ जाता है। विपरीत मौसम के कारण कृषि चौपट होने से कृषि क्षेत्र में रोज़गार के अवसर समाप्त होने एवं गैर-कृषि कार्यों में ग्रामीण क्षेत्र में अवसर न होने से लोग पलायन को मजबूर हो गए हैं। हमारे आस-पास के लोग उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, कश्मीर तक आजीविका की तलाश में पलायन कर रहे हैं। यहाँ ये प्रमुख रूप से कृषि कार्य, निर्माण कार्य एवं ईंट भट्ठों आदि में मज़दूरी का कार्य वर्ष के आठ महीनों में करके फिर निजी कृषि कार्य हेतु वापस गाँव लौट आते हैं। इन अस्थाई मज़दूरों का इन प्रदेशों में जमकर शोषण होता है। अनेक अवसरों में आर्थिक एवं शारीरिक शोषण के लिए बंधक बनाए जाने की घटनाऐं भी प्रकाश में आती रहती हैं।

मौसम बदलाव के पीछे हम किसानों ने वनक्षेत्रों में आई कमी को एक बड़ा कारण माना है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वनों के घटने से चिंतित ग्रामीणजनों ने सुझाव दिया कि कृषि भूमि पर भी अनिवार्य रूप से वृक्षारोपण का नियम शासन द्वारा बनाया जाए। इसके तहत प्रत्येक कृषक को अपनी कृषि भूमि में कम से कम पाँच वृक्ष प्रति एकड़ के हिसाब से लगाना और सुरक्षित रखना अनिवार्य किया जाए।

किसानों की यह अपेक्षा है कि प्रत्येक किसान के खेत में निजी सिंचाई सुविधाओं का विकास करने में सरकार को प्राथमिकता देना चाहिए। निजी तालाब, कुँए के व्यापक निर्माण से जल संरक्षण को भी बढ़ावा मिलेगा तथा वर्ष भर कृषि कार्य से स्थानीय स्तर पर रोज़गार के अवसर सृजित होंगे।

इसके साथ ही कृषि शिक्षा के तहत प्राचीन कृषि पद्धतियों एवं ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जाए। इससे मौसम के लक्षणों एवं पूर्वानुमान के आधार पर स्थानीय स्तर पर कृषि पद्धति में आवश्यक परिवर्तन कर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी भरपूर उपज लेने में किसान सक्षम हो सकेंगे। इस प्रकार पोषक आधार, आजीविका एवं स्वास्थ्य निरन्तर अच्छा रह सकेगा।

नाम : रामकरण एवं राम गोपाल

उम्र : 50 वर्ष एवं 40 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

समुदाय : गूजर

पता : ग्राम-लापोड़िया एवं गागलडू (क्रमशः), जयपुर (राजस्थान)

5

प्यासी धरती, भूखे जानवर, मरता किसान

राजस्थान के अर्द्ध-शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र में मुख्यतः तीन मौसम - सर्दी, गर्मी व वर्षा - थे तथा प्रत्येक मौसम चार माह के लिए होता था। पिछले सालों से जलवायु में परिवर्तन की वजह से मौसम का चक्र गड़बड़ हो गया है। गर्मी के दिनों की संख्या बढ़ गई है व दूसरे मौसम के दिनों की संख्या घट गई है। साल में लगभग 9 माह गर्मी पड़ती है। सबसे ज्यादा बदलाव बरसात के मौसम में हुआ है। साल में वर्षा के दिनों की संख्या 14—17 मात्र ही रह गई है। अतः वर्षा की तीवृता भी बढ़ी है। पहले वर्षा की मात्रा व तीवृता सौ कोस में एक जैसी होती थी परन्तु वर्तमान में तो 10x10 किलोमीटर में वर्षा की मात्रा में बड़ा फर्क होता है। किसी गाँव में मानसून व किसी गाँव पर अकाल दिखता है।

पानी की समस्या :

जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा असर पानी पर पड़ा है। इससे पूरा कृषि तंत्र फेल हो गया है तथा पीने के पानी की समस्या गम्भीर हो गई है। वर्षा का कम होना तथा लगातार भूमिगत जल के उपयोग ने जल स्तर की स्थिति को गंभीर कर दिया है। शुरुआत में तो लोग जैसे-जैसे पानी नीचे जाता रहा वैसे-वैसे कुँओं को गहरा कराते गए व अपना साल भर का गुजारा करते रहे। कुँए को गहरा कराने की सीमा जब समाप्त हुई तब कुँए में आड़े व तिरछे बोर कराने का सिलसिला शुरू हुआ व एक साल में ही इस प्रयास ने भी दम तोड़ दिया। अब तो हालत यह है कि खेती के 97 प्रतिशत कुँए तो बिल्कुल ही सूख गए हैं व गाँव में पीने का पानी भी खत्म हो गया। लोगों को तालाब के नीचे से या गाँव के बाहर तीन-चार कि.मी. से पानी लाकर पीना पड़ रहा है। जैसे-जैसे पानी कम होता गया पानी में अम्लीयता व क्षारीयता भी बढ़ गई और इसी कारण पानी की गुणवत्ता खराब हो गई जिसका असर मानव व पशु दोनों पर पड़ा है। इसी वजह से कई गाँवों में चाय भी फट जाती है।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव :

हमारे क्षेत्र में बारानी कृषि होती है। सारी आजीविका भी कृषि पर ही निर्भर करती है। वर्षा की अनियमितता एवं अनिश्चितता के कारण किसान कुछ भी प्लान नहीं कर सकता है, उसको अचानक अपने प्लान में परिवर्तन करना पड़ता है। अचानक प्लान में किसान असफल ही होता है या उसे महँगा पड़ता है।

बारानी कृषि में जहां किसान दो फसल लिया करते थे अब मात्र एक ही फसल खरीफ के रूप में करने लगे हैं। अधिकांशतः किसान खरीफ में खाने के लिए मक्का व बाजरा तथा चारे के लिए ज्वार आदि व कैश क्रॉप के रूप में मूँग, तिल, मूँगफली आदि बोते थे। परन्तु जलवायु में हुए परिवर्तन के कारण वर्षा के मौसम में अपर्याप्त वर्षा/ वर्षा की निश्चित समयावधि में आए अंतराल के कारण किसानों की आजीविका प्रभावित हुई है। जिन व्यक्तियों के पास जमीन नहीं है, उनको फसलों की कटाई, निराई-गुड़ाई, दवाई छिड़काव आदि कार्यों के लिए मौसमी रोजगार उपलब्ध होता था। जलवायु से प्रभावित होने से किसान खरीफ की फसलों से अधिक मात्रा में उत्पादन नहीं ले पा रहे हैं जिस कारण फसल संबंधित कार्य मजदूरों से न करवाकर परिवार के लोग स्वयं ही कर लेते हैं। इससे मजदूरी करने वालों में मौसमी बेरोजगारी बढ़ी है और आर्थिक स्थिति कमजोर हुई है। बाकी की कृषि में से 60 प्रतिशत खेती 15 से 20 दिन के अंदर खत्म हो जाती है। इस क्षेत्र में रबी में सरसों की फसल होती थी जो अब बिल्कुल भी नहीं होती है। खरीफ में मूँग, ज्वार, बाजरा इत्यादि फसल लेते हैं। असामान्य व न्यूनतम बारिश होने के कारण खाद्यान्न व चारा उत्पादन प्रभावित हुआ है। उत्पादन बेचना तो दूर की बात है घरेलू खपत जितना भी नहीं होता है। सिंचित फसल तो होना बन्द ही हो गई है। पर्याप्त मात्रा में बरसात नहीं होने के कारण खेतों में रबी के सीजन में बारानी खेती होना खत्म हो गई है। पहले रबी में जौं, गेहूँ बारानी जमीन मैं पैदा होते थे आज सिंचित जमीन पर भी पैदा होने बंद हो गए हैं। खेत में नमी को रोकने के लिए बार-बार निराई व जुताई करनी पड़ती है, जिससे खेती का खर्चा दोगुना बढ़ गया है। जल स्रोतों में बरसात का पानी नहीं भरने के कारण भूमिगत जल स्तर दिन प्रतिदिन गिरता ही जा रहा है। कुँओं में पीने के लिए भी वर्ष भर के लिए पानी नहीं है तो खेती के लिए पानी की तो आस ही नहीं कर सकते। कुछ कुँओं में पानी है भी तो कुछ में फ्लोराईड है व कहीं खारा पानी तो कहीं पर तेलीय पानी है जिससे अगर बारानी खेती की भी जाए तो उत्पादन बहुत कम होता है। अब किसान सारा दमखम खरीफ की फसल में लगाते हैं, उसमें भी लगभग 40 प्रतिशत जमीन वर्षा की अनिश्चितता एवं अनियमितता के कारण बो ही नहीं पाते हैं। जायद की फसल के समय के लिए न तो पानी होता है न ही अनुकूल परिस्थितियाँ। तेज गर्मी, कुँओं में पानी का अभाव और आँधियाँ चलती रहती हैं। किसान इन परिस्थितियों का सामना करके फसल नहीं ले सकता। अतः जायद की फसल लेना किसानों ने पूरी तरह से बंद कर दिया है।

कम होते चारागाह से बढ़ती पशुपालन की समस्याऐं :

वर्षा की अनियमितता व कमी की वजह से चारागाहों का उत्पादन घटते-घटते लगभग खत्म हो गया है। चारागाह में घास की किस्म व सघनता खत्म हो रही है। पेड़ भी अजकल नहीं दिख रहे हैं। चारागाह में घास न होने से उस पर अतिक्रमण बढ़ रहा है।

सार्वजनिक जमीन का निजी उपयोग होने लगा है। आज कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव बढ़ने से पशुधन के लिए चारागाह की महत्वपूर्ण भूमिका है। चारागाह में घास होती तो शायद किसानों की हालत इतनी खराब नहीं होती। घास, पेड़ों की बढ़वार व उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं होने तथा सरकार व विकास संस्थाओं का इस संसाधन पर ध्यान नहीं होने की वजह से पशुधन बर्बादी की ओर बढ़ रहा है।

क्षेत्र में जीवनयापन का मुख्य स्रोत कृषि एवं पशुपालन ही है तथा जिस तरह जलवायु परिवर्तन का असर कृषि उत्पादन एवं पशु उत्पादन पर पड़ा है उससे तो ग़रीब किसान क्या बड़े किसानों की भी हालत ख़राब हो गई है। जैसे-जैसे कृषि खत्म होती जा रही है पशुपालन भी दम तोड़ रहा है। फिर भी किसानों के पास जहाँ 8—10 पशु होते थे वहाँ अब मात्र एक-दो पशु ही हैं। बाकी के सब मर गए या बेच दिये गए अथवा ऐसे ही छोड़ दिए गए। चारे की फसलें जो पूरे पकने में लगभग तीन माह का समय लेती हैं तथा वर्षा कम होने की वजह से नष्ट हो जाती हैं, जिससे इन वर्षों में चारे की कमी ने भयंकर रूप ले लिया है। चारे के भाव 8 रुपये प्रति किलो तक हो गए तथा आसपास में उपलब्ध भी नहीं है। अतः जो बचा हुआ पशुपालन था वो भी अब तिल-तिल कर मर रहा है।

नाम : भोला पुजहर

उम्र : 45 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

समुदाय : पहाड़िया

पता : ग्राम-कुकुरतोपा, प्रखण्ड-मसलिया, जिला-दुमका (झारखण्ड)

6

लुप्त होती पहाड़िया जनजाति

मैं भोला पुजहर पहाड़िया जनजाति से हूँ। इस जनजाति के लोग झारखण्ड राज्य के संथाल परगना प्रमण्डल में मूल रूप से बसते हैं। हमारा अतीत काफी गौरवपूर्ण रहा है। अकबर से लेकर अंग्रेजी हुकूमत तक को हमने टक्कर दी और उन्हें संधि करने के लिए बाध्य किया।

हमारे पूर्वज बताते थे कि 1770 में झारखण्ड, बंगाल, उड़ीसा आदि राज्यों में भीषण अकाल पड़ा था। बंगाल में बड़ी तादात में भूख से लोगों की मृत्यु हुई थी। मैदानी क्षेत्र में पानी और मृदा का अभाव होने पर पहाड़िया जनजाति के लोगों ने पहाड़ों के ऊपर जाकर शरण ली। इसी वजह से आज आपको पहाड़िया जनजाति के काफी गाँव पहाड़ पर मिलेंगे। पहाड़िया जनजाति के लोगों ने पहाड़ों पर बरबटी (जिसे लोबिया के नाम से भी जाना जाता है), मकई, कोकून, अरहर, सरसों, सबई घास आदि को उगाना प्रारम्भ किया। ये सारी नकदी फसलें हैं परन्तु अन्य नकदी फसलों की तुलना में इन फसलों का लागत मूल्य नगण्य है। ये सारी फसलें ''झूम खेती'' प्रणाली से होती थीं परन्तु पहाड़ों और जंगलों का पर्याप्त ध्यान रखा जाता था। एक साल खेती करने पर अगले वर्ष उस जमीन को आराम करने छोड़ दिया जाता था। ये सारी फसलें बगैर हल-बैल के प्रयोग के की जाती थीं।

वस्तुतः बरबटी हम सब के जीवन का अभिन्न हंग है। कोकून हम सब उपजाते थे और रेशम के कपड़ों की बुनाई संथाल परगना से सटे बिहार और बंगाल के सीमावर्ती जिलों में होती थी। 1980 के दशक के अंत और 1990 के दशक के प्रारंभ से हमारे क्षेत्र में मौसम का मिजाज बदलने लगा। पहाड़ पर लगने वाली फसल जुलाई-अगस्त माह में बोयी जाती है और नवम्बर-दिसम्बर माह में इनकी कटाई होती है। इन फसलों को फल लगने के पूर्व एक नियमित अंतराल में पानी की आवश्यकता होती है। चूँकि पहाड़ पर क्रत्रिम पटवन का कोई साधन नहीं है अतः हमें वर्षा पर ही आश्रित रहना पड़ता है।

हमारे इलाके में जून से सितम्बर-अक्टूबर तक बारिश होती थी। जून से सितम्बर माह तक

तीन-चार दिनों के अंतराल में अच्छी बारिश हो जाती थी। परिणामतः पहाड़ी मिट्टी में इन महीनों में हर वक्त नमी बनी रहती थी। परन्तु अब ऐसी स्थिति नहीं है। कई पखवाड़े बिना बारिश के गुज़र जाते हैं। पहले वर्षा की निरन्तरता से पहाड़ी और मैदानी इलाकों का मिट्टी के नीचे का जलस्तर भी संतुलित रहता था। झरना, जोरिया (छोटी नदी/नाले) बारहों माह चला करते थे और पहाड़ पर बसे लोगों को आवश्यकतानुसार जल उपलब्ध हो जाता था। विगत एक-डेढ़ दशक से स्थिति में व्यापक बदलाव आया है। खेती के लिए पानी के अभाव के साथ-साथ गाँवों में पेयजल का भी संकट उत्पन्न होने लगा है। जानवरों को नहलवाने एवं पीने के पानी हेतु पहाड़ के नीचे उतारना पड़ता है। गंदा पानी पीने के कारण डायरिया/हैजा जैसी महामारियों की घटना बढ़ने लगी है। इसी साल पिछले कुछ माह में डायरिया/हैजा से पूरे संथाल परगना प्रमण्डल में पाँच सौ से अधिक लोगों की जानें गईं। वर्षा की अनियमितता के कारण पहाड़ पर चारा का संकट भी उत्पन्न होने लगा है।

पेयजल, चारा आदि के संकट का सीधा बोझ महिलाओं एवं किशोरियों को झेलना पड़ता है। तीन-चार कि.मी. की दूरी से पानी/चारा लाने वाली महिलाऐं/किशोरियाँ अक्सर छेड़खानी या दुर्व्यवहार की शिकार होती हैं। पहले आदिवासी समाज में बलात्कार या छेड़खानी की घटना नहीं के बराबर थी।

संथाल परगना में बाढ़ की घटना को अनहोनी माना जाता है। कभी-कभी अचानक काफी पानी बरस जाता है। जंगलों की कटाई के कारण मैदानी इलाकों के अधिकांश जोरिया, नदी, नाले बालू से भरकर उथले हो गए हैं। उनमें जल-ग्रहण क्षमता घटती जा रही है। अतः बारह-पंद्रह घंटे बारिश होने पर बाढ़-सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है और हजारों एकड़ में लगी फसल देखते-देखते बर्बाद हो जाती है।

जंगलों की कटाई और लम्बी तेज बारिश से पहाड़ों की मिट्टी में तेजी से कटाव होने लगा है। पहाड़ों पर खेती के लिए कम से कम डेढ़-दो फीट मिट्टी की परत आवश्यक मानी जाती है। मिट्टी के अत्यधिक बहाव के कारण पहाड़ पर खेती लायक जमीन भी दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। अब पहाड़ पर भी अकाल का असर होने लगा है।

बीमारियों में बदलाव :

यह क्षेत्र काफी दिनों से मलेरिया से प्रभावित रहा है। इस बीमारी का प्रभाव गर्मी और सर्दी के मौसम में समाप्त या अत्यधिक कम हो जाता था। परन्तु अब इस बीमारी का कहर बारहों महीने कायम रहता है। उल्टा दिमागी बुखार (ब्रेन मलेरिया) की घटना बढ़ने से इसकी क्रूरता और बढ़ गई है। पहले कालाजार उत्तर बिहार के मैदानी क्षेत्र की बीमारी मानी जाती थी पर अब इसका आतंक पूरे संथाल परगना में फैल चुका है।

आजीविका पर बाजार का असर :

मौसम में आए बदलाव के साथ-साथ बाजार का मिजाज भी पिछले डेढ़-दो दशकों में बदला

है। जैसा कि कहा जा चुका है कि पहले स्थानीय महाजन बरबटी और कोकून खरीदने हेतु खेत में फसल लगे रहने पर ही किसान को अग्रिम राशि पकड़ाते रहते थे। इसी प्रकार कोकून खरीदने बंगाल और बिहार के व्यापारी महीनों गाँवों/हाटों का चक्कर लगाया करते थे। अब स्थिति पूरी तरह उलट गई है। अब किसानों को महाजनों/व्यापारियों के पीछे दौड़ना पड़ता है। स्थानीय महाजन की शिकायत है कि अब बरबटी का आयात दक्षिण-पूर्वी देशों से होने लगा है और मुम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि मंडियों में संथाल परगना की बरबटी का कोई लेनदार नहीं रहा। ठीक इसी प्रकार बंगाल/बिहार के सीमावर्ती जिलों में सिन्थेटिक सिल्क चीन से आयात होने लगा है। अतः कोकून का बाजार भी ठहर-सा गया है। स्थानीय व्यापारी स्थानीय सामानों को बाहर भेजने के बजाय बड़ी-बड़ी कम्पनियों के सामान के विक्रेता बन गए हैं। अंततः मौसम के बदलाव ने पुराने राजनीतिक मुद्दों पर भी असर डाला है। पहले हमें मालूम था कि महाजन हमारे शोषक हैं परन्तु अब हमारे दुश्मन ओझल हो गए हैं और हमें पता नहीं किससे और कैसे उनके खिलाफ लड़ना है।

सरकारी मदद :

मौसम के मिजाज को बेहतर बनाने में सरकारी पहल नगण्य है। उल्टा मौसम को और चिढ़ाने वाला ही है। अन्य सरकारी योजना/विभाग के अलावा मेसो परियोजना और आत्मा योजना (विश्व बैंक की मदद से कृषि विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजना) विशेष रूप से पहाड़िया समाज की बेहतरी हेतु प्रयासरत है। इन विभागों द्वारा पारम्परिक खेती को बचाने के बजाय विदेशी कम्पनियों के बीज, ट्रेक्टर, उन्नत नस्ल के गाय, बैल, सुअर, बकरी, पावर टिलर आदि दिये जाते हैं, जो रासायनिक खाद, कीटनाशक, सुनिश्चित सिंचाई आदि को बढ़ावा देता है। पहाड़ी फसलें - बरबटी, कोकून, राहड़, सरसों आदि को बचाने या आगे बढ़ाने की कोई योजना इनके पास नहीं है। नरेगा आदि के अंतर्गत ऐसी कोई योजना नहीं ली जा रही है जो जलवायु के मिजाज को बेहतर बनाए। पत्थरों की तुड़ाई के लाइसेंस लगातार दिये जाने के कारण पहाड़ों का विनाश हो रहा है।

लुप्त होती पहाड़िया जनजाति :

इन्हीं चीजों का असर है कि तमाम सरकारी प्रयासों के बावजूद पहाड़िया जनजाति की आबादी लगातार घटती जा रही है। यह क्रम अगर जारी रहा तो कुछ दिनों के बाद पहाड़िया जनजाति इस धरती से ही विलुप्त हो जाएगी।

वैश्यावृत्ति में बढ़ोत्तरी :

जलवायु परिवर्तन का असर यहाँ के पहाड़िया ही नहीं, अन्य आदिवासी एवं गैर आदिवासी समूहों पर भी पड़ा है। शायद ही कोई संथाल बस्ती होगी जहाँ के स्त्री, पुरुष, बच्चे रोजी-रोटी की तलाश में पलायन नहीं करते हैं। अधिकांश बड़े शहरों में हमारे इलाके की लड़कियाँ घरों में बाई का काम करते आपको मिल जाऐंगी। घरेलू कार्य, छद्म शादी आदि के नाम पर बाहर जाने वाली किशोरियाँ कालक्रम में सदा के लिए अपने इलाकों से गुम हो जाती हैं। यौन शोषण, बलात्कार आदि

की घटना में बढ़ोत्तरी हुई है। पहले वैश्यावृत्ति का प्रचलन हमारे इलाके में बिल्कुल न था। अब अर्थाभाव के कारण यह समास्या बढ़ती जा रही है। बिहार में बक्सर और भागलपुर के बीच हजारों ईंट भट्ठे गंगा तट पर होंगे। एक ईंट भट्ठे में दो-तीन मजदूर काम करते हैं। यहाँ भी अधिकांश मजदूर हमारे क्षेत्र की किशोरियाँ ही हैं, जो धीरे-धीरे विवशता में देह व्यापार का धंधा अपना लेती हैं।

जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव तो हमारी कृषि और खाद्य सुरक्षा पर देखा जा सकता है, लेकिन इसके प्रभाव के कई आयाम हैं। इसकी चोट ग़रीब पर चारों ओर से पड़ती है। सारी चीजें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। हम देख सकते हैं कि किस प्रकार जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से वैश्यावृत्ति तक में बढ़ोत्तरी हो रही है।

महाराष्ट्र

नाम : प्रकाश देवबा लोखंडे व संघपाल अरुण वाहूरवाघ

उम्र : 50 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : टिटवन, अकोला, (महाराष्ट्र)

7

कपास के शहर अकोला में जलवायु परिवर्तन

विदर्भ में महाराष्ट्र का अकोला जिला कपास का शहर (Cotton City) के नाम से जाना जाता है। यहाँ की भूमि (काली मिट्टी) उत्पादन वृद्धि के लिए ज्यादा लाभकारी होने के साथ-साथ यहाँ पर जंगल की मात्रा अधिक है। इस जिले का किसान अपनी आजीविका खेती के साथ-साथ वनोपज संग्रहण के माध्यम से चलाता है। कुछ परिवार खेती पर आधारित मजदूरी व वनोपज के सहयोग से आजीविका का निर्वाहन करते हैं।

टिटवन नाम का गाँव अकोला जिले के बार्शिटाकली तहसील से 35 कि.मी. अंदर स्थित है। इस गाँव में 100 प्रतिशत परिवार अनुसूचित जाति के हैं। इनमें से 50 प्रतिशत लोग खेती कार्य, 40 प्रतिशत लोग खेती मजदूरी, 10 प्रतिशत लोग जंगल की लकड़ी, पत्तल, वनोपज का संग्रहण करने वाले लोग हैं। जलवायु परिवर्तन से पिछले 7 से 8 वर्ष से इस गाँव के लोगों की आजीविका पर जो प्रभाव दिखाई दे रहा है उस संबंध में टिटवन गाँव के कृषक श्री प्रकाश देवबा लोखंडे के साथ चर्चा हुई और साथ ही गाँव में लोगों के साथ चर्चा के माध्यम से निम्न प्रकार के मुद्दे उभरकर आए हैं -

वर्षा की मात्रा में काफी हद तक कमी :

10 साल पहले वर्षा बहुत मात्रा में हुआ करती थी। 7 जून से ही वास्तविक वर्षा का आरंभ हुआ करता था। इस वर्षा से जिले में सर्वत्र दिशा की नदी, तालाब पानी से भर जाते थे। कभी ज्यादा वर्षा के कारण बाढ़ जैसे स्थिति उत्पन्न हो जाया करती थी। पहले 7 से 8 दिनों तक सतत वर्षा हुआ करती थी। पर पिछले 8–9 वर्षों से वर्षा की मात्रा में बहुत तेजी से गिरावट हुई है। वर्तमान में वर्षा की शुरुआत जुलाई से होती है, जबकि पहले जून से हुआ करती थी। किसान का बीज बोना और बरसात का गिरना इस में मेल नहीं होता है। कभी बीज बोया जाता है तो बरसात नहीं होती तो कभी बरसात पहले हो जाती है बीज बाद में बोया जाता है।

जैविक संसाधन में परिवर्तन या गिरावट :

पहले बहुत जंगल होने के कारण गाँव के लोग जंगल से लकड़ी, पत्तल के लिए पत्ता, बीड़ी के लिए पत्ता, आम, बीबी, हिरडा, गोंद, मोहुआ, बेल के संग्रहण से अपनी आजीविका का निर्वहन किया करते थे। पर जंगल कट जाने के कारण यहाँ पर जंगल की मात्रा नहीं के बराबर है। वर्तमान में यहाँ पर वनोपज नहीं होने के कारण यहाँ के परिवार को अपनी आजीविका चलाने में समस्याऐं हो रही हैं। यहाँ के लोग बेरोजगार हुए हैं। पहले गरमी के समय नीम पेड़ में फल आते थे वह वर्तमान में बरसात में आते हैं। साथ ही आम, काजू, संतरा, मोसंबी आदि पेड़ को फल आने का नाम ही नहीं है। जंगल में मौजूद जड़ी-बूटियों से लोग अपना इलाज कर लेते थे। अब उन्हें बीमारी के समय शहर जाना पड़ता है, जिससे उनका खर्च और बढ़ गया है।

जंगली जानवरों की कमी :

जंगल में रहने वाले जानवरों को पीने के लिए पानी नहीं मिलने के कारण वह जानवर गाँव में पानी की खोज में आते हैं। जंगल के जानवर गाँव में आने के कारण गाँव में रहने वाले लोगों को परेशानी होती है। कभी-कभी गाँव के लोग जंगली जानवर से जख्मी भी होते हैं। जंगल में पानी की मात्रा के अभाव में जंगल में रहने वाले पशु-पक्षियों की काफी मात्रा में मृत्यु हो रही है। वर्तमान में कौचे, गीद, चीमनि, कोकिल आदि पक्षियों में बहुत हद तक गिरावट हो रही है।

जानवरों की मात्रा में गिरावट :

पहले गाँव में गाय, बैल, बकरी, भैंस की मात्रा बहुत थी। गाँव में जनसंख्या की तुलना में जानवरों की संख्या चारगुणा हुआ करती थी। जिस परिवार के पास खेती नहीं है वैसा परिवार भी पशुपालन का व्यवसाय करता था। पहले जंगल अधिक होने के कारण वर्षा अधिक थी साथ ही जानवर के लिए घास की कमी नहीं थी। मात्र वर्तमान में जानवरों के लिए घास नहीं मिलने के कारण लोगों ने अपने जानवरों के साथ कृषि योग्य भूमि भी बेच दी है। पहले गाँव में दूध की गंगा बहा करती थी और वर्तमान में गाँव में एक कप चाय के लिए भी दूध नहीं मिलता है। यह बदलाव पर्यावरण परिवर्तन से हुआ है।

पेयजल में गिरावट :

पीने के पानी का सवाल गंभीर हो रहा है क्योंकि टिटवन गाँव के पास महान गाँव में काटेपूर्णी जल परियोजना अकोला जिले के कुल परियोजना में से पहले स्थान की जलपरियोजना है। इस बांध से अकोला शहर को पीने के पानी के साथ ही आसपास की खेती को सिंचाई की व्यवस्था हो जाती थी। पर पिछले 8 साल से यह बांध शतप्रतिशत कभी नहीं भरने के कारण अकोला शहर में 7 दिन के अंतर पर पीने को पानी दिया जाता है साथ ही आसपास में रबी खेती का क्षेत्र कम हुआ है। इस साल बरसात नहीं होने के कारण वर्तमान में बांध में 15 प्रतिशत पानी है। इसी

कारण किसान एवं खेत मजदूरों को भूखा रहने की स्थिति निर्मित हुई है साथ ही पशु और पक्षी को पीने का पानी नहीं मिलने के कारण उनकी मृत्यु हो रही है।

खेती की उपज में गिरावट :

खेती की उपज में बहुत बदलाव हुआ है। जमीन की उपज क्षमता में गिरावट हुई है। बरसात की अनियमितता से फसल मर जाती है। पहले बरसात अच्छी होने के कारण फसल अच्छी होती थी, वर्तमान में बरसात के अभाव में फसल में गुणवत्ता नहीं रहती है। बरसात समय पर नहीं होने के कारण बीज कई बार बोना पड़ता है। बाजार की मंहगाई से बीज खरीदकर बीज बोना किसान के लिए आसान नहीं है। कर्जा लेकर बीज बोने के पश्चात् अनियमित बारिश से खेती ठीक नहीं होने से किसान को आत्महत्या करनी पड़ती है। पहले खर्चा कम और उपज ज्यादा होती थी, वर्तमान में उपज कम और खर्चा ज्यादा हो रहा है। बरसात समय पर नहीं होने के कारण उड़द, मूँग, तिल आदि फसलों में गिरावट हुई है।

किसान के दोस्त जैसे कीटों का अंत :

पहले खेती में जैविक जीवों की संख्या मतलब केंचुओं की संख्या ज्यादा होने के कारण जमीन नरम थी। वह इतनी नरम थी कि सिर के ऊपर का मिट्टी का बर्तन भी गिर जावे तो टूटता नहीं था। वर्तमान में केंचुओं का अंत होने के कारण जमीन कठोर हुई है व खेतों की उपज क्षमता में गिरावट आई है क्योंकि फसल के ऊपर रोगों के प्रभाव में वृद्धि हुई है।

कृषि योग्य जमीन की बिक्री में वृद्धि :

पहले गाँव की भूमि गाँव वालों की मालिकी की थी, वर्तमान में शहर का साहूकार ज्यादा पैसे देकर जमीन को खरीद चुका है। पहले जिस परिवार की मालिकी जिस भूमि पर थी वही परिवार उस भूमि का मजदूर है। इसका नतीजा भूमिहीनों की वृद्धि हुई है।

परम्परागत बीज का अंत :

पहले गाँव में परम्परागत बीजों से खेती की जाती थी, वर्तमान में यह बीज नहीं हैं। वर्तमान में GM Food के कारण इसका अंत हुआ है।

कार्य में बदलाव :

वर्तमान में खेती पैदावार में गिरावट होने के कारण किसान अपनी खेती पर कार्य करने के साथ ही अन्य की खेती पर मजदूरी, निजी फैक्ट्री में कार्य करने के लिए मजबूर हैं। गाँव में काम नहीं मिलने के कारण काम की खोज में गाँव से परिवार के परिवार पलायन भी कर रहे हैं।

नाम : सोबन सिंह

उम्र : 55 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : ग्राम-बूढ़ीबना, ब्लॉक-रामगढ़, जिला-नैनीताल (उत्तराखण्ड)

8

पहाड़ो पर लुप्त हो रही हैं वनस्पतियाँ व सेब की प्रजातियाँ

मैं सोबन सिंह ग्राम बूढ़ीबना का रहने वाला हूँ जो कि विकासखण्ड रामगढ़ जिला नैनीताल के अंतर्गत आता है। मेरी जानकारी में पिछले कुछ दशकों में इस पूरे क्षेत्र के मौसम के बदलने के कारण जो बदलाव मैंने देखे हैं उसका संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ -

जल स्रोतों पर प्रभाव :

चार दशक पहले तक रामगढ़ घाटी अपने अलौकिक सौन्दर्य और अपनी विशेष जलवायु के कारण अपने आप में विशेष स्थान रखती थी। यह समूचा क्षेत्र चारों तरफ बाजं बुराशं खरस्युं आदि के घने जंगलों से आच्छादित था। इस क्षेत्र में रामगढ़ के नाम से जानी जाने वाली नदी एक समय में पूरी घाटी को सिंचित किया करती थी। आज यह नदी मात्र बरसाती नाला बनकर रह गई है और सूखने के कगार पर है। इस पूरे क्षेत्र में वर्ष भर बादल देखने को मिलते थे जो इस क्षेत्र में नमी बनाए रखने का कार्य करते थे। यहाँ पर समय-समय पर वर्षा होती रहती थी, जिससे जल स्रोतों में वर्ष भर पानी रहता था। अब इनमें से आधे से अधिक जल स्रोत सूख गए हैं। जिन छोटे नालों में पहले वर्ष भर पानी रहता था वे अब पूर्ण रूप से सूख चुके हैं।

वर्तमान में इस क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों से लगातार बाहरी बिल्डरों द्वारा काफी सारी जमीन को खरीदकर बड़े-बड़े भवन तथा रिसॉर्ट बनाए गए हैं। चौड़ी पत्ती के जंगलों तथा बगीचों को काटा गया है। जमीन की खुदाई, मोटर मार्ग और उनके ऊपर भवन निर्माण से पानी के काफी स्रोत सूख गए हैं। रामगढ़ नदी में आज से 20 वर्ष पहले तक 45–50 घराट (पनचक्की) वर्ष भर चलते थे। अब मात्र 3–4 ही रह गए हैं। जल स्रोतों में आई कमी के कारण क्षेत्र में होने वाला मछली व्यवसाय तो पूरा ही समाप्त हो गया है।

फल उत्पादन पर प्रभाव :

इस क्षेत्र में पहले जाड़ों में दो से तीन माह तक बर्फ रहती थी जिससे मौसम ठण्डा रहता

था। ये मौसम हमारे फलों की खेती के लिए काफी उपयोगी होता था। पर कुछ सालों से चौड़ी पत्ती के जंगलों को लगातार काटा जा रहा है। जो जंगल वर्तमान में बचे भी हैं उनमें चीड़ की प्रजाति के पेड़ों की लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है जिससे इस क्षेत्र में होने वाली ठण्ड में कमी आयी है। इसका सीधा प्रभाव हमारे फलों की खेती पर हुआ है।

मौसम में आए बदलाव के कारण सेब की विभिन्न प्रजातियाँ लुप्त हो गई हैं। बचे-खुचे पुराने पेड़ अपनी लम्बी आयु के कारण समाप्त होते जा रहे हैं। किसान द्वारा पुरानी किस्मों की नई पौध लगाने का प्रयास भी लगातार किया जाता रहा है परन्तु मौसम में आए बदलाव के कारण वे सफल नहीं हो पा रहे हैं। ये पौधे थोड़े समय में स्वतः ही सूख कर नष्ट हो जा रहे हैं। आजकल फलों का आकर छोटा हो गया है, पकने से पहले ही उनमें कीड़े लग रहे हैं और फल दागी हो रहे हैं।

किसानों को मजबूरन हाइब्रिड फलों के पौधों का रोपण करना पड़ रहा है। इनकी गुणवत्ता पहले जैसी नहीं है। इनमें पड़ने वाली दवाओं की कीमतें भी हर वर्ष बढ़ती जा रही हैं। पहले पैदा होने वाले फलों को गाँव के भीतर ही 3–4 माह तक संग्रहित किया जाता था जिसके बाद अच्छी कीमत मिल जाती थी। परन्तु अब हाइब्रिड फलों को स्टोर करके नहीं रखा जा सकता। ये जल्दी सड़ जाते हैं इसलिए जिस-किसी भी भाव में तुरन्त बेचना पड़ता है। इस प्रकार फलों के व्यवसाय में आजकल लाभ कम नुकसान ज्यादा हो रहा है। वर्तमान में हमारे क्षेत्र में सेब की फसल पिछले 30 वर्षों में एक चौथाई होकर रह गई है।

पारम्परिक खेती पर प्रभाव :

समय पर वर्षा न होने के कारण लोगों की फसलें सूख रही हैं तथा यहाँ पर बेमौसमी वर्षा अधिक हो रही है। अत्यधिक मात्रा में वर्षा होने पर लोगों की फसलें खराब हो रही हैं। जगह-जगह भूस्खलन हो रहा है। खेत नष्ट हो रहे हैं। मौसम में बदलाव का प्रभाव पारम्परिक खेती पर भी पड़ा है। धान, गेहूँ, जौं, मटर आदि की फसल में कमी आई है। जो गोल मूली 5 किलो की होती थी अब वो मात्र आधा किलो की हो रही है। लोगों ने अब आलू, टमाटर, बीन्स आदि बे-मौसम की सब्जियों को बोना शुरू कर दिया है। लोग अपनी खेती के तरीकों को भी बदल रहे हैं। परम्परागत खेती के स्थान पर रासायनिक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। इन्हें बाजार में बेचने पर लोगों के हाथ में सीधे पैसे आ जाते हैं। इस कारण से क्षेत्र में होने वाले मोटे अनाज कम हो गए हैं। रासायनिक खादों और दवाईयों के दुष्प्रभाव से फसल और लोगों में बीमारियाँ फैल रही हैं। खेत बंजर हो रहे हैं। लोगों का दवाईयों का खर्च बढ़ रहा है। आजकल लोगों में पीलिया, मियादी बुखार, सिरदर्द, घुटनों में दर्द, त्वचा संबंधी रोग अधिक हो रहे हैं।

अब ग्रामीणों को सभी बीज, खाद तथा दवाओं को बाजार से खरीदकर लाना पड़ता है। इन फसलों के लिए अत्यधिक पानी की आवश्यकता होती है। समय से वर्षा न होने पर तथा पानी की कमी से इसकी पैदावार प्रभावित हुई है। दूसरी तरफ बाजारों में इन बीजों तथा दवाओं की

लगातार बढ़ती जा रही कीमतों ने किसानों की कमर तोड़ दी है। मौसम परिवर्तन, जंगलों में कमी व रासायनिक खेती के कारण उचित मात्रा में चारा नहीं मिल पा रहा है। पशुपालन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। लोग औसतन 12 जानवरों की जगह 2 जानवर पाल रहे हैं। गोबर और खाद की कमी हो गई है।

जैव विविधता पर प्रभाव :

सेब की किस्में तो नष्ट हो ही रही हैं साथ में अनेक औषधीय गुण वाले पौधे भी नष्ट हो रहे हैं। मुख्य रूप से यहाँ चिरायता, जंगली तुलसी, धिघारू, किलमोड़ा, सिलफोड़ा, तिमुर आदि पर्याप्त मात्रा में होते थे। ये जड़ी-बूटियाँ लोगों और जानवरों के लिए काफी महत्वपूर्ण थीं। आज इनकी मात्रा में काफी कमी आई है।

मौसम परिवर्तन का प्रभाव कीट, पतंगे, पक्षी व वन्य जीवों पर भी दिख रहा है। इनकी मात्रा में पहले से काफी कमी आई है। जंगली जानवर जैसे - काकड़, बारहसिंघा, घुरड़, सियार, बाघ, ऊदबिलाव, सॉल आदि तो अब यहाँ दिखाई नहीं देते हैं। हालांकि सुअर अब ज्यादा दिखाई दे रहे हैं जो कि जंगलों से अब खेतों में आ गए हैं और खेतों को नुकसान पहुँचा रहे हैं। बरसात के दिनों में कीट-पतंगे, तितलियाँ, मकड़ी, जुगनू, मधुमक्खियाँ तथा पक्षी जैसे - रंगबिरंगी चिड़िया, कोयल, कौवा, घुघुते, सिटौले, करौल, चमगादड़, तोता, मैना, बुलबुल, बाज, गिद्ध आदि दिखाई देते थे, जो अब दिखाई नहीं देते हैं। जुगनू तो पूरी तरह समाप्त हो गए हैं।

नाम : सीता देवी

उम्र : 45 वर्ष

व्यवसाय : कृषि तथा पशुपालन

पता : ग्राम-पाण्डेछोड़, वि.ख.-भीमताल, जिला नैनीताल (उत्तराखण्ड)

9

जलवायु परिवर्तन से महिलाऐं अब और असुरक्षित

मैं सीतादेवी, ग्राम पाण्डेछोड़, विकासखण्ड भीमताल, जिला नैनीताल की रहने वाली हूँ। मेरा पूरा परिवार खेती के कार्य से जुड़ा हुआ है। गाँव के अधिकांश लोग कृषि तथा पशुपालन के कार्य से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

आज से करीब 15 वर्ष पहले खेती को प्राकृतिक चीजें जैसे - वर्षा का जल, धूप आदि नियमित रूप से मिल जाते थे जिससे फसलें अच्छी होती थीं। परन्तु आज देखा जा रहा है कि जैसे-जैसे मौसम में बदलाव हो रहा है, वैसे-वैसे फसलों की मात्रा और गुणवत्ता में कमी आ रही है।

15–20 वर्ष पूर्व यहाँ पर धान, मडुवा, मक्का, गेहूँ, जौ, चने, ज्वार, बाजरा, आलू, मिर्च, पिनालू तथा भट्ट, गहत की खेती की जाती थी और समय से मौसम के अनुसार फसलों को पानी मिल जाता था, जिससे फसलें बहुत अच्छी होती थीं। फसल इतनी मात्रा में होती थी कि उसे अपने उपयोग के बाद बेचा भी जाता था पर अब ऐसा नहीं हो पाता है। लोगों की निर्भरता बाजार पर अधिक हो गई है। लोग बनिये पर अधिक निर्भर हो गए हैं और ऋणग्रस्त अधिक हो गए हैं।

इस समय खेतों में आलू, बीन, टमाटर, गोभी व धान लगा रखी थी परन्तु इसका कोई भी लाभ समय से वर्षा न होने तथा बेमौसमी वर्षा अधिक होने से किसानों को नहीं मिल पा रहा है। क्योंकि जिस समय फसल को पानी मिलना चाहिए उस समय वर्षा नहीं हो रही है। जिससे फसलें सूखती जा रही हैं। थोड़ी-बहुत फसल जो बचाई भी जा रही है उसे बेमौसम वर्षा होने से नुकसान हो रहा है। इस समय में न तो फसलों को उचित मात्रा में धूप मिल रही है न ही पानी। आज ग्रामीणों को अपने उपयोग के लिए भी बाजार से सब्जियाँ खरीदकर लानी पड़ रही हैं।

आज इस पूरे क्षेत्र में खेती करने का तरीका बदल गया है। परम्परागत खेती पूरी तरह से समाप्त हो गई है। खेतों में फसल अच्छी हो इसके लिए फसलों में रासायनिक खाद जैसे डाई, यूरिया, एम.पी.के. का प्रयोग किया जा रहा है। शुरुआती तौर पर किसानों ने सोचा कि रासायनिक

खाद का प्रयोग करने से फसल पर और ज्यादा अच्छा प्रभाव पड़ेगा और उसका प्रयोग करने लगे जिससे फसलें भी काफी अच्छी होने लगीं। हर बार फसलों में रासायनिक खाद का ही प्रयोग होने लगा। उस समय यह अनुमान नहीं लगाया गया था कि इसका प्रयोग करने से खेतों की उर्वरकता पर प्रभाव पड़ेगा। जिसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे खेत खराब होने लगे और आज खेतों की स्थिति इतनी खराब हो चुकी है कि हमें मजबूर होकर रासायनिक खाद का ही प्रयोग करना पड़ रहा है।

पिछले 15–20 वर्षों में खेती में जो बदलाव आए हैं उससे आज की खेती पूरी तरह से बदल गई है। पहले बारिश पर्याप्त मात्रा में और समय से होती थी। उस वक्त परम्परागत खेती की जाती थी जिसमें साल में सिर्फ दो ही समय खेत में बुवाई की जाती थी परन्तु एक साथ कई फसलें उगाई जाती थीं। उन दिनों महिलाओं को खेत पर काम करने के लिए कम जाना पड़ता था और उनका कार्यबोझ कम होता था। उन फसलों से पशुओं के लिए चारा पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था। पशुओं को जंगल में कम जाना पड़ता था तथा उन दिनों जानवरों की संख्या भी अधिक रहती थी। परिवारों को दूध, दही, घी पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था और महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता था। पशुओं के कारण खेती के लिए खाद भी उपलब्ध हो जाती थी। पहले गाँव के भीतर प्रत्येक परिवार के पास 7–8 जानवर रहते थे परन्तु अब जंगलों की दूरी तथा चारे की कमी के कारण पशुपालन में कमी आ गई है। कुछ परिवारों ने तो जानवरों को पालना ही बन्द कर दिया है।

आजकल एक साल में चार फसलों का उत्पादन किया जा रहा है। अधिकांश लोग सिर्फ सब्जियाँ ही दवाईयों के प्रयोग से उगा रहे हैं। सब्जियों के उत्पादन में महिलाओं को अपना अधिक से अधिक समय खेतों में लगाना पड़ रहा है। रासायनिक खाद तथा दवाईयों के अधिक प्रयोग का सीधा प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। पहले की अपेक्षा महिलाऐं अब अधिक बीमार रहने लगी हैं। इलाज का खर्च बढ़ गया है व कभी-कभी तो 40 कि.मी. दूर तक इलाज करवाने के लिए जाना पड़ता है।

दवाईयों के उपयोग से खेतों की उर्वरक शक्ति खत्म हो रही है। फसलों का उत्पादन भी कम हो रहा है जिससे चारे की उपलब्धता भी कम हो रही है। महिलाओं को चारे के लिए पूर्ण रूप से जंगलों पर निर्भर रहना पड़ रहा है। जैसे-जैसे जंगलों की दूरी बढ़ती जा रही है वैसे-वैसे महिलाओं की समस्याऐं भी बढ़ती जा रही हैं।

गाँव के नजदीक बहने वाली कलसा नदी में पूरे वर्ष भर पानी भरपूर मात्रा में रहता था जिससे खेतों की सिंचाई की जाती थी। पिछले 20 वर्षों की अपेक्षा अब नदी के पानी का स्तर लगातार घटता जा रहा है। गाँव के पास के घराट (पनचक्की) सालभर चलते थे। अब पानी की कमी के कारण सभी घराट बंद हो गए हैं। नदी में अब बरसात के मौसम में ही पानी देखने को मिलता है बाकी मौसम में पानी बहुत कम हो गया है। गाँव स्तर पर जल स्रोत भी खत्म हो गए हैं।

महिलाओं पर इसका सीधा प्रभाव पड़ा है क्योंकि पानी की जिम्मेदारी महिलाओं की ही होती है।

पशुओं की संख्या भी कम हो रही है जिससे दूध का उत्पादन भी सीमित हो गया है। सारा दूध डेयरी में चला जाता है, घर के उपयोग के लिए नहीं रखा जाता। महिलाओं को पहले जो दूध-दही मिल जाया करता था वह अब नसीब नहीं होता। इससे उनके स्वास्थ्य पर काफी विपरीत असर पड़ा है। पशुपालन से जो भी आय हो रही है वह सीधे पुरुषों के हाथ में जा रही है, महिलाओं को उसका कोई भी फायदा नहीं मिलता। परिवारों की छोटी-छोटी जरूरतों को भी बाजार से ही पूरा किया जा रहा है। पहले जहाँ घर की सारी जरूरतें घर पर ही पूरी जो जाती थीं वहीं अब महिलाओं को भी मजदूरी के लिए बाहर जाना पड़ रहा है। बदली हुई इस पूरी व्यवस्था में महिलाऐं आज अपने आपको असुरक्षित महसूस कर रही हैं।

उत्तरप्रदेश

नाम : अजान सिंह

उम्र : 43 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : ग्राम-तजपुरा, प्रखण्ड-माधौगढ़, जिला-जालौन (उत्तरप्रदेश)

10

जलवायु परिवर्तन से निपटने के पुराने तरीके ज्यादा कारगर

मेरा नाम अजानसिंह उम्र 43 वर्ष है तथा पिता का नाम दीनदयाल है। मैं ग्राम तजपुरा विकासखण्ड माधौगढ़ का रहने वाला हूँ। मेरे गाँव के 90 प्रतिशत लोग कृषि तथा मजदूरी से जीवन यापन करने वाले हैं। मैं एक किसान हूँ। मेरे पास ढाई बीघा सिंचित जमीन है। मेरे परिवार में 7 सदस्य हैं। मेरे परिवार की आय का मुख्य स्रोत खेती-किसानी है। 20 साल पहले तक हमारे गाँव में सभी किसान खुशी-खुशी अपने खेतों में फसल बुवाई करते हुए अपने परिवार की रोजी-रोटी चला रहे थे। परन्तु पिछले 10–15 वर्षों से मौसमी बदलाव के कारण हमारी फसलों का उत्पादन बहुत कम हो गया है, जिसकी वजह से पूरे गाँव के सामने आजीविका का संकट गहराता जा रहा है।

हमारे पिताजी व दादाजी की पीढ़ी के समय यहाँ सब कुछ ठीक था जैसे चार महीने वर्षा, चार महीने सर्दी और चार महीने गर्मी। जिस कारण उनको कभी खेती-किसानी में वर्षा कमी के कारण मुश्किलों का सामना नहीं करना पड़ा और बड़ी आसानी से खाद्य सुरक्षा एवं खर्चों की पूर्ति हो जाती थी। परन्तु हमारे सामने तो अब ऐसा समय आ गया है कि हम लोगों को खेती करने से पहले बहुत सोच-विचार करना पड़ता है कि फसल तो बो रहे हैं परन्तु अगर वर्षा नहीं हुई तो हमारी आय घाटे में चली जाएगी। वर्षा के अभाव में हम किसानों को कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है, जैसे सिंचाई करने के लिये पानी की कमी पड़ जाती है, जिसके चलते पीने का पानी व पशुचारे आदि की समस्या खड़ी हो गई है। इन सबका हमारी जिन्दगी पर व हमारी खाद्य सुरक्षा पर बहुत प्रभाव पड़ रहा है। मैं आपको अपना उदाहरण देते हुये इन सभी कठिनाइयों की वास्तविकता से अवगत कराना चाहता हूँ।

हमारे क्षेत्र में पिछले 5 वर्षों से लगातार सूखा की स्थिति बनी हुई है। हमारे द्वारा अपनी ढाई बीघा जमीन में गेहूँ एवं सरसों की खेती की जाती थी, जिससे परिवार की खाद्य सुरक्षा बनी रहती थी। लेकिन वर्षा के अभाव तथा सिंचाई की कमी के कारण गेहूँ का उत्पादन कम होता चला गया, जिसके कारण मुझे खेती में लगातार रूप से दो वर्ष घाटा हुआ और परिवार की आर्थिक स्थिति चरमरा गई। फसल से अधिक आमदनी प्राप्त करने की चाह में वर्ष 2004 में पहली बार अपने

खेत में सब्जी की खेती प्रारम्भ की तथा खेत में रासायनिक खाद, बीज, कीटनाशक तथा सिंचाई के चलते लगभग 20,000 रुपये लागत आई। रात दिन पूरे परिवार के मेहनत करने के बावजूद भी सूखे के कारण इस वर्ष फसलोत्पादन बहुत कम हुआ और मेरे ऊपर 15,000 रुपये साहूकार का कर्जा हो गया। कर्जा चुकाने के लिए मैंने अपनी भैंस तथा बाकी सभी जानवर भी बेच दिए। इस बिगड़ी हुई स्थिति में हमें सरकार से किसी भी प्रकार का कोई सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। छिटपुट रूप से कुछ सरकारी योजनाओं के बारे में कभी-कभार कुछ सुनने को तो मिलता है परन्तु जमीनी स्तर पर इसके लाभ से हम हमेशा वंचित रहे।

मेरे सामने आजीविका संकट का पहाड़ टूट पड़ा। मेरे पास पलायन करने के अलावा कोई चारा नहीं था। मैं ही नहीं मेरे गाँव के और भी किसान इसी संकट से जूझ रहे थे और सभी ने मिलकर गाँव की खेती-बाड़ी छोड़कर शहर में मजदूरी करने का निर्णय लिया। तब मैं एक साल के लिए अपनी आजीविका कमाने हेतु गुजरात चला गया। वहाँ पर मैंने मजदूरी का काम प्रारम्भ किया परन्तु वहाँ पर अधिक परिश्रम करने की वजह से मेरी तबियत बिगड़ गई और मुझे अपने गाँव वापिस आना पड़ा।

मेरे पास खेती के अलावा और कोई रास्ता बचा नहीं था। मैंने एक बार फिर से हिम्मत जुटा कर खेती की शुरुआत की। इस बार मैंने जैविक खाद का प्रयोग किया। मैंने पाया कि जैविक खाद के प्रयोग से बहुत कम लागत में दोगुनी फसल का उत्पादन हुआ। इस वर्ष हुए फायदे से हमें कोई अतिरिक्त मुनाफा तो नहीं हुआ लेकिन पहले वाली फसल के नुकसान की भरपाई जरूर हो गई। मैंने अपने बच्चों की पढ़ाई फिर से शुरू करवा दी है। अपने अनुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि हमारे बाप-दादाओं की खेती की तकनीक आज से कहीं ज्यादा टिकाऊ थी। मुझे सौभाग्यवश परमार्थ संस्था का सहयोग भी मिला जिसने हमें जैविक खाद बनाने का प्रशिक्षण दिया। आज मैं अपने पूरे खेत में पालक, मैथी, गाजर, टमाटर, बैंगन आदि सब्जियाँ उगा रहा हूँ तथा जैविक खाद के जरिये अपनी भूमि की उपजाऊ शक्ति को भी बढ़ा रहा हूँ। जैविक खादों का प्रयोग करने से मेरी सब्जियाँ बाजार में सबसे पहले बिकती हैं।

मेरी पत्नि भी खेती-बाड़ी के काम में सहयोग करती है। वह स्वयं घर पर ही बीज तैयार कर लेती है तथा प्रति सप्ताह स्थानीय बाजार में सब्जियाँ बेचकर 500 रुपये की आमदनी कर लेती है। इस नये प्रयोग से जो कि पुराने ज्ञान पर आधारित है मैंने साहूकार का कर्जा चुका कर अपने आप को कर्जमुक्त कर लिया है।

नाम : अरन हनुमंत
उम्र : 45 वर्ष
व्यवसाय : कृषि
पता : ग्राम-गोजवाड़ा, जिला-उसमानाबाद (महाराष्ट्र)

11

जैविक खेती ज़्यादा कारगर

मैं अरन हनुमंत मराठवाड़ा क्षेत्र के गोजवाड़ा गाँव, जिला उसमानाबाद का रहने वाला हूँ। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव जिनको कि मैने अनुभव किया है वो इस प्रकार हैं -

15–20 वर्ष पहले वर्षा नियमित रूप से 7 जून तक शुरू हो जाती थी। आजकल ये काफी देर से शुरू होती है व बहुत कम दिनों के लिए बारिश होती है। तापमान भी पिछले कुछ वर्षों से लगातार बढ़ता जा रहा है। इससे किसानों की हालत काफी खराब हो गई है। आजकल फसल में फूल देर से आते हैं तथा वो पूरी तरह से पकते भी नहीं हैं। पैदावार भी कम हुई है और अनाज की गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा है। आजकल ठण्ड में ठीक से कुहासा और ओस भी नहीं टपकती जिसका रबी की फसल पर प्रभाव पड़ता है। वर्षा की कमी और अनियमितता के कारण किसानों ने अपनी पैदावार में 5 क्विंटल प्रति एकड़ की दर से कमी महसूस की है। पानी और चारे की कमी के कारण पशुओं की क्षमता भी आधी से कम रह गई है।

आधी से ज्यादा जमीन में जहाँ पहले मिश्रित खेती की जाती थी अब वहाँ नकदी फसल बोई जा रही है। 10–15 साल पहले किसान खरीफ के समय तुअर, ज्वार, सूर्यमुखी, तिल, चने, धान, बाजरा आदि बोते थे। अब उनका रुझान सोयाबीन, गन्ना और कपास जैसी फसलों की तरफ हो रहा है।

पारम्परिक खेती से अपनी जरूरत भी पूरी हो जाती थी और लागत भी कम आती थी। लेकिन अब कपास और गन्ने की फसल अगर ठीक से नहीं हुई तो किसान की कमर टूट जाती है। पारम्परिक बीज अब खत्म हो रहे हैं। खाद, बीज और दवाईयों के लिए किसानों को बाजार पर निर्भर होना पड़ता है, जिन्हें खरीदने के लिए कई बार साहूकार से कर्ज भी लेना पड़ता है। हाइब्रिड बीज की फसल में अगर बारिश में थोड़ी भी देर हो जाए तो पौधे तुरन्त मर जाते हैं। नए बीज और रासायनिक खाद के इस्तेमाल से आजकल की फसल इतनी नाजुक हो गई है कि मौसम की जरा भी मार नहीं झेल पाती है। मौसम बदलाव के कारण खेती के उत्पादन में 30 से 40 प्रतिशत

की गिरावट आई है। दूसरी तरफ खेती में लागत काफी बढ़ गई है। गरीब किसान के पास आज न तो अनाज है न ही कमाई जिससे वह अपना गुजारा कर सके।

वर्षा कम होने के कारण किसान जमीन से पानी निकाल रहे हैं। पानी की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और उसी रफ्तार से जल-स्तर नीचे गिरता जा रहा है। आजकल 500–700 फीट के बाद ही पानी मिल पाता है। खेती और उद्योगों में बढ़ रहे रासायनिक इस्तेमाल से पानी की गुणवत्ता भी काफी कम हो गई है।

पिछले कुछ दिनों से मैंने जैविक खेती शुरू की है जिससे मेरी स्थिति काफी हद तक सुधर रही है। मैंने इसे पहले एक हैक्टेयर जमीन पर आजमाया तो पाया कि इसमें लागत नहीं के बराबर है। आस-पास की चीजों को मिलाकर मैंने खुद खाद तैयार किया। यह खाद न सिर्फ फसल के लिए असरदार है बल्कि इससे जमीन की नमी भी बढ़ती है।

पिछले दो वर्षों से बारिश बहुत कम हो रही है। सूखे के हालात पैदा हो गए हैं। ऐसे में भी हमारी खेती बच गई क्योंकि मैंने जैविक खाद का प्रयोग किया था। वहीं आस-पास के खेतों में पानी के अभाव में फसल या तो सूख चुकी है या फिर सूखने वाली है। जैविक पद्धति के इस्तेमाल से मेरे खेत में नमी अभी भी बरकरार है।

पिछले दो वर्षों से मेरे खेतों की पैदावार बढ़ रही है। मैं मिश्रित फसल, जैसे - ज्वार, बाजरा, तिलहन, दाल आदि लगा रहा हूँ जिससे मेरे परिवार का भी गुजारा हो जाता है और साथ में उन्हें बेचकर थोड़ी आमदनी भी हो जाती है। अब मुझे साहूकार से कर्ज लेने की कोई जरूरत नहीं है।

मौसम में आ रहे तेजी से बदलाव के मद्देनज़र हम सरकार से निम्नलिखित अपेक्षा रखते हैं -

- जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसमें लागत बहुत कम आती है एवं ये मौसम की अनियमितता को आसानी से झेल सकते हैं।
- कम वर्षा वाले क्षेत्र में सरकार को जल एवं मृदा संरक्षण के लिए व्यापक प्रयास करने चाहिए। मेढ़बंदी, चेकडैम, तालाब बनाने का कार्य रोजगार गारंटी योजना के तहत लिया जाना चाहिए।
- हमारे क्षेत्र में पहले से ही पानी की कमी है फिर भी बड़े किसान गन्ने और कपास की खेती कर रहे हैं जिन्हें पानी की काफी आवश्यकता होती है। सरकार को इस प्रकार के पानी के इस्तेमाल को नियंत्रित करना चाहिए।

नाम : लच्छूराम

उम्र : 40 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

समुदाय : कोल

पता : ग्राम-कुशियरा, पोस्ट-मतवार, वि.ख.-हलिया, जिला-मिर्जापुर

12

कृषि का बदलता स्वरूप

पिछले 10 वर्षों में मौसम के समय व आवर्तकाल में काफी परिवर्तन हुआ है। पहले तीन मौसम होते थे - सर्दी, गर्मी व बरसात - जो कि 4–4 महीनों में बंटे होते थे। पिछले 5–6 सालों में इनके समय में बदलाव स्पष्ट रूप से महसूस किया गया है। सर्दी और बरसात का समय घटा है तथा गर्मी का समय बढ़ा है। बरसात का समय घट कर जुलाई-अगस्त तथा ठण्डी का समय जनवरी-फरवरी तक सिमट कर रह गया है। पिछले साल 3 जून से ही वर्षा आरम्भ हो गई थी और अगस्त के अन्त तक समाप्त हो गई थी और इस साल पूरे क्षेत्र में न्यूनतम वर्षा भी नहीं हुई। जलवायु परिवर्तन के कारण इस क्षेत्र में औसत तापमान में वृद्धि हुई। यह तापमान मई-जून में बढ़कर 48 डिग्री सेल्सियस तक चला जाता है। इस वृद्धि के कारण इस क्षेत्र में पैदा होने वाली कई तरह की पारम्परिक फसलें तथा स्थाई फूल व पौधों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। अनेकों प्रकार के कीट-पतंगों व पक्षियों की प्रजातियाँ ही विलुप्त हो गई हैं।

नई कृषि, नई समस्याऐं :

मेरे इलाके में 90 प्रतिशत लोगों की आजीविका खेती पर निर्भर है। पहले यहाँ वर्षा आधारित खेती का प्रचलन था। मोटे अनाजों की मिश्रित खेती होती थी, जिसमें किसी प्रकार के रासायनिक खाद तथा दवाओं का प्रयोग नहीं होता था। लेकिन अब बहुफसली खेती का प्रचलन घट गया है। अब खेती सिमटकर एक या दो फसलों तक रह गई है, जिसमें मुख्य रूप से धान तथा गेहूँ की फसलें ली जाती हैं। इन फसलों के लिए पानी की अधिक आवश्यकता होती है। इस क्षेत्र में पानी की कमी होने के कारण इन फसलों का दायरा बहुत ही कम हो गया है जिससे खाद्यान्न उत्पादन में कमी आई है। इनकी अधिक पैदावार के लिए पानी, खाद तथा रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता होती है जिसमें लागत अधिक तथा उस अनुपात में उत्पादन कम है। पहले सामान्य वर्षा हो जाती थी जिससे मोटे अनाजों, दलहन व तिलहन की नगदी फसलें बिना किसी लागत के पैदा होती थीं। इससे किसानों को अच्छी आय हो जाती थी लेकिन असामान्य वर्षा तथा सूखे के कारण नगदी फसलों की खेती घटी है। पिछले कुछ वर्षों में रासायनिक खाद, कीटनाशक, बीज, डीजल तथा बिजली की दरों

में कई गुना वृद्धि हुई है लेकिन उस अनुपात में किसानों के यहां पैदा होने वाले अनाज का दाम नहीं बढ़ा, जिससे कृषि का काम संकट में है। पानी की कमी तथा सिंचाई के संसाधनों के अभाव के कारण कम क्षेत्रों में ही खेती हो पा रही है जिससे गैर-कृषि क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी हुई है। लोगों के पास बीज अब खत्म हो रहे हैं। बाजार के बीज महँगे होने से लोग बाजार के बीज खरीद नहीं पा रहे हैं। जमीन में पोषक तत्वों की संख्या घटी है, जिससे जमीन की उर्वरा शक्ति घटती जा रही है। इसके साथ ही फसलों में अनेक प्रकार के नए-नए रोग लग रहे हैं। इनके निवारण हेतु रासायनिक दवाओं का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इन सब कारणों से कृषि में लागत बढ़ती जा रही है। ये समस्याऐं किसानों को अपनी इच्छानुसार फसलों को उगाने, बीजों को संग्रहित करने तथा कठिन समय के लिए अनाज को संग्रह करने में बाधा उत्पन्न करता है।

महिलाओं व बच्चों पर प्रभाव :

आजकल महिलाओं को घर के साथ-साथ बाहर के कार्य भी करने पड़ रहे हैं। गाँवों में काम की कमी के कारण उन्हें पुरुषों के साथ पलायन भी करना पड़ता है। पलायन के दौरान अनेक रूपों में शोषण का सामना करना पड़ता है। भोजन की कमी का असर उन पर अधिक पड़ता है क्योंकि सामाजिक परम्परा के कारण महिलाऐं सबके बाद में खाना खाती हैं। अन्त में जो खाना बचता है वही खा कर उन्हें गुजारा करना पड़ता है। लड़कियों को स्कूल से हटाकर मजदूरी या छोटे बच्चों की देख-रेख तथा पशुओं की देख-रेख के काम में लगा दिया जाता है। खान-पान तथा साफ-सफाई का उचित प्रबंध न होने के कारण महिलाऐं तथा लड़कियां अधिक कुपोषित हैं। जलजनित बीमारियाँ, जैसे - डायरिया, पेचिस, पीलिया आदि पहले से ज्यादा हो रही हैं। धन के अभाव में समय पर इलाज नहीं हो पाता जिससे मृत्यु दर बढ़ गई है।

कुछ सुझाव :

इन परिस्थितियों से निपटने के लिए लोगों के पास पारम्परिक ज्ञान मौजूद है। कम पानी वाली फसलों की खेती, परम्परागत बीज, जंगली उत्पादों का संग्रह, मोटे अनाजों का संग्रह से आसानी से इन परिस्थितियों से निपटा जा सकता है। जल संरक्षण हेतु वर्षा के पानी को रोकने के लिए मेड़ बांधना, छोटे-छोटे मिट्टी के बांध बनाना, कुँओं, बावड़ियों का निर्माण, घास लगाना, वृक्षारोपण आदि पारम्परिक विधियों के द्वारा ज़मीन का संरक्षण किया जाता था। इन पारम्परिक ज्ञान व तकनीक को बचाये रखने की आवश्यकता है, जिससे स्थाई कृषि को बढ़ावा मिल सके। किसानों के हित में नीतियाँ बनाई जाऐं जो कि इस प्रकार से हों -

- किसानों को एक प्रतिशत ब्याज पर कृषि ऋण दिलाया जाए
- खाद एवं बीज पर अनुदान बढ़ाया जाए
- जैविक खेती को बढ़ावा देने हेतु विशेष सुविधाऐं तथा अनुदान उपलब्ध कराया जाए
- किसानों के हित में जल-जमीन संरक्षण के कार्य कराए जाऐं

- कृषि को कुशल कार्य का दर्जा दिया जाए
- हायब्रिड बीजों को प्रतिबंधित किया जाए
- कृषि में विदेशी कंपनियों के हस्तक्षेप को रोका जाए
- किसानों को अपनी फसल के मूल्य निर्धारण का अधिकार दिया जाए
- हर उत्पाद का समर्थन मूल्य निर्धारित किया जाए
- किसान क्रेडिट कार्ड की ऋण सीमा बढ़ाई जाए।

नाम : माल सिंह

13

उम्र : 58 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

समुदाय : भील जनजाति

पता : ग्राम-नदिया, पंचायत-बीची, तहसील-शाहबाद, जिला-बारां

खत्म होते प्राकृतिक संसाधन

मैं मालसिंह, नदिया गाँव, पंचायत बीची, ब्लॉक शाहबाद जिला बारां का रहने वाला हूँ। मेरे परिवार में कुल 10 सदस्य हैं। मैं भील समुदाय से हूँ व मुख्य रूप से किसान हूँ। खेती के अलावा मैं नरेगा में भी मजदूरी करता हूँ। मेरे गाँव में कुल 22 परिवार हैं।

मुझे याद है कि 20 साल पहले तक अच्छी बारिश हुआ करती थी। इतने सालों में सरकार और जनता के द्वारा भारी मात्रा में जंगल काटे गए हैं। जब सरकार ने आदिवासियों को जमीन दी तो उन्होंने जंगल काट कर अपनी खेती के लिए जगह बनाई। मवेशियों को खिलाने के लिए भी काफी पेड़-पौधे काटे गए। अब मात्र 25 प्रतिशत ही जंगल रह गया है और वो भी पहाड़ों पर स्थित है।

जल संसाधनों पर प्रभाव :

पहले वर्षा चार महीनों तक होती थी जो कि अब घट कर दो महीने हो गई है। लोग पहले पास के तालाब से पानी पिया करते थे। लेकिन अब उसका जल स्तर काफी कम हो गया है और पानी पीने लायक नहीं बचा। पहले 10—15 फीट से पानी निकल आता था पर अब पानी के लिए 35—40 फीट तक जाना पड़ता है। कुनू नदी में अक्टूबर माह तक घुटनों पानी हुआ करता था। अब यह करीब-करीब सूख चुकी है। पहले पूरे इलाके में वर्षा से ही खेती होती थी पर अब बिना सिंचाई के खेती सम्भव नहीं।

कृषि पर प्रभाव :

पिछले कुछ सालों में वर्षा में विलम्ब के कारण पहले जो बुआई जून में हो जाया करती थी वह अब जुलाई में या उसके भी बाद होती है। अगर रबी के दौरान तापमान बढ़ जाए तो फसल जल जाती है। पारम्परिक बीज जिन्हें मैं पहले बोया करता था वे अब खत्म हो चुके हैं। अब इनकी जगह ज्यादा उत्पादन देने वाले बीजों ने ले ली है पर इनमें लागत ज्यादा आती है। पहले यहाँ

ज्वार, धनिया और अलसी की फसल हुआ करती थी पर अब चारों तरफ सोयाबीन छाया हुआ है। सिर्फ सोयाबीन की फसल होने के कारण इस क्षेत्र में नए प्रार के कीट उत्पन्न होने लगे हैं। खराब मौसम में भी अच्छी उपज देने वाले राली, चीना, सावा, अलसी, कथ्याा गेहूँ अब इस क्षेत्र से बिल्कुल ही लुप्त हो गए हैं।

वन उत्पाद पर प्रभाव :

इस क्षेत्र के लोगों की आजीविका वनोपज पर भी निर्भर थी। लोग जंगल से शहद, तेंदूपत्ता, सफेद मूसली और गोंद निकालकर गुजारा किया करते थे लेकिन जंगलों के कट जाने के कारण इन उत्पादों में काफी कमी आई है। पौधे, जैसे कि सफेद मूसली, खतवारी, बहेड़ा, खैर, ढोकड़ा, बाँस आदि लगातार कम हो रहे हैं। यहाँ तक कि हिरण, भालू, सांभर, चीता जैसे जानवर भी आजकल जंगल में नहीं दिखते हैं। मुझे याद है कि पहले कीटों को मारने के लिए कीटनाशकों की जरूरत नहीं हुआ करती थी क्योंकि पक्षियों की संख्या काफी थी जो कि कीटों को नियंत्रित रखते थे। अब ये सारे पक्षी कहीं गायब हो गए हैं।

पशुओं पर प्रभाव :

पिछले कुछ सालों में पशुओं की संख्या काफी कम हो गई है जिसका कारण पानी और चारे में आई कमी है। जंगलों की कमी से और चारागाह भूमि पर अतिक्रमण के कारण चारे की समस्या और गम्भीर हो गई है। पहले मक्का और अरहर की खेती खूब होती थी जिससे चारा भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो जाया करता था, लेकिन अब स्थिति काफी बदल चुकी है।

पारम्परिक ज्ञान :

हमारे पास मौसम को समझने के लिए पर्याप्त पारम्परिक ज्ञान मौजूद है। अगर सारस पक्षी पलायन कर जाए तो हमें पता चल जाता था कि बारिश नहीं होगी। अगर टिटौरी गड्ढे में अण्डे दे तो वह पानी की कमी दर्शाता है। अगर टिटौरी 4 अण्डे दे तो उसका मतलब है कि 4 महीने की बारिश होगी। इसी प्रकार पीपल में अगर ढेर सारे फल आऐं तो उसका मतलब होता है कि फसल की पैदावार अच्छी होगी। और अगर महुआ के फलों में कीड़े लग जाऐं तो समझ लो कि फसल में भी कीड़े लगने वाले हैं।

मौसम में हो रहे बदलाव से निपटने के लिए सबको साथ मिलकर कदम उठाना होगा। सरकार को चाहिये कि ज्यादा से ज्यादा वृक्षारोपण करे, कम पानी वाले बीज विकसित करे और पारम्परिक ज्ञान को और आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करे।

गुजरात

नाम : रूपाभाई वस्ताभाई राबरी

उम्र : 55 वर्ष

व्यवसाय : पशुपालन

पता : ग्राम-पियावा, ब्लॉक-चोरिला, जिला-सुरेन्द्रनगर (गुजरात)

14

चरवाहों पर प्रकृति और समाज की दोहरी मार

मैं रूपाभाई, गाँव पियावा, चोरिला सुरेन्द्रनगर का रहने वाला हूँ। करीब 40 साल पहले हमारा संयुक्त परिवार था जिसमें हम 4 भाई, 2 बहनें और माता-पिता थे। हम सम्मान-पूर्वक एक साथ खुशी-खुशी रहते थे। हमारे परिवार में उस वक्त 200 भेड़, 100 बकरी और 40 गाय थीं। हमारा पूरा परिवार पशुपालन का कार्य करता था। उन दिनों चारागाहों की या चारे की कमी नहीं होती थी। पशु आजादी से खुली भूमि में चर सकते थे। अच्छा और पर्याप्त मात्रा में चारा मौजूद होने के कारण ये काफी स्वस्थ्य भी हुआ करते थे। इनके बच्चे भी हट्टे-कट्टे और स्वस्थ्य हुआ करते थे। इनसे अच्छी मात्रा में ऊन व खाद हमें प्राप्त हो जाया करता था। हम उन दिनों काफी समृद्ध थे। सारे त्यौहार हम सब मिल-जुल कर हर्षोल्लास के साथ मनाते थे।

मेरा बाल विवाह हुआ था। मेरी पत्नी धमेनु प्रथा के तहत 50 भेड़ें लेकर आई। धमेनु प्रथा में बेटी या बहन को ससुराल जाते वक्त पशु भेंट किया जाता है ताकि वो अपने नए घर की शुरूआत कर सके और उसके परिवार की आजीविका चलती रहे। उस वक्त 50 भेड़ मेरे पिताजी ने मुझे दिये और 25 भेड़ें मुझे ढाल के रूप में भेंट मिलीं। ढाल एक ऐसी प्रथा है जिसमें जब कोई परिवार से अलग होता है तो उसे परिवार के सदस्यों द्वारा भेंट दी जाती है ताकि उसकी आजीविका चल सके। अगले साल तक मेरे पास भेड़ों की संख्या बढ़कर 180 हो गई। इसके साथ-साथ घी, खाद, ऊन और कुछ पशु बेचकर मैं और मेरा परिवार और समृद्ध हो गया।

1986—87 में गुजरात में बहुत बुरा अकाल पड़ा। हम अपने रास्ते बदलने को मजबूर हो गए। हमारे पास उपलब्ध चारा भूमि पर लोगों ने कब्जा कर लिया। चारा अब खरीदकर लाना पड़ने लगा। मजबूरीवश हमें अपने पशु बेचने पड़े क्योंकि उनको खिलाने के लिए चारा हमारे पास नहीं था। दूसरी तरफ सफेद क्रान्ति के कारण हमें अपने दूध का अच्छा दाम मिलना बंद हो गया। हमें अपनी यात्रा के दौरान किसानों से झगड़ने की नौबत आने लगी जिससे हमारे संबंध भी बिगड़ गए।

हमारे यहाँ माना जाता है कि ''माल होय तो मोभो होय'' अर्थात् जितने ज्यादा पशु होंगे

उस व्यक्ति का उतना ज्यादा सम्मान होगा। पर अब स्थितियाँ बदल गई हैं। आज हम अपनी आजीवका के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। इस पूरी प्रक्रिया में हमने अपना सम्मान और स्वाभिमान दोनों खोया है।

अब जलवायु परिवर्तन से अकाल जैसी स्थिति स्थाई रूप से हमारे समुदाय के ऊपर छा गई है। मौसम/जलवायु ने हमसे चारा छीन लिया और बची कसर लोगों ने चारा भूमि का हड़प कर पूरी कर दी। जिस प्रकार के परिवर्तन हमारे आस-पास समाज में देखने को मिल रहे हैं उसमें तो तय है कि प्रकृति कब तक चुपचाप बैठी रहेगी।

नाम : देवा लाल बैरवा

15

उम्र : 61 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

समुदाय : अनुसूचित जाति

पता : ग्राम-बढ़ पथराज, जिला-टौंक (राजस्थान)

खेती से पलायन की ओर

मैं देवा लाल बैरवा, बढ़ पथराज, जिला टौंक का रहने वाला हूँ। मेरे गाँव में कुल 86 घर हैं। मेरे अपने परिवार में बेटों और पोते-पोतियों को मिलाकर कुल 18 सदस्य हैं।

मौसम :

20 साल पहले तक हमारे यहाँ 4 महीनों तक बारिश होती थी जिसे चौमासा कहते थे। अब यह घट कर दो महीने रह गई है। अब बारिश कहीं होती है तो कहीं नहीं। एक तो बारिश कम हो रही है दूसरी तरफ वह इतनी तेज होती है कि फायदे के बदले और अधिक नुकसान हो जाता है। जो बारिश पहले 26 जून तक शुरू हो जाती थी वह अब जुलाई के अंत में हो रही है। इस साल सिर्फ दो बार अच्छी बारिश हुई। 15 अगस्त के बाद तो मात्र कभी-कभार बूँदा-बांदी ही हुई, बारिश नहीं हुई। गर्मी के समय में भी फर्क पड़ा है। 25—30 साल पहले गर्मी मई-जून में पड़ती थी पर इस साल तो सितम्बर के महीने तक गर्मी रही।

कृषि :

पहले लोग मिश्रित रूप से ज्वार, चना, गेहूँ आदि बोते थे। सिंचाई का पानी होने के कारण लोग एक ही फसल उगाते थे। लोग आमतौर पर कम पानी वाली फसल उगाते हैं, जैसे- बाजरा, तिल, उड़द, मूँग, मोठ, सरसों आदि। पानी की कमी, मौसम की अनियमितता और मिट्टी की उर्वरकता कम होने के कारण चना, ज्वार और गेहूँ की खेती बहुत कम होती है। मूँगफली की फसल अब बहुत कम हो गई है क्योंकि अब बारिश का कोई हिसाब-किताब नहीं रहा। आजकल कीट और कीड़े काफी मात्रा में फसलों को नष्ट कर देते हैं। जिससे पैदावार में काफी फर्क पड़ा है। बीज बोने के समय में भी काफी फर्क पड़ गया है। अब सरसों 15 दिन और चना करीब 10 दिनों के बाद बोया जाता है। वैसे सबसे अच्छा तो मेरे अनुसार मिश्रित खेती ही है जिसमें अनियमित मौसम से लड़ने की काफी क्षमता होती है।

जंगली संसाधन :

इस क्षेत्र में चिला और खजूर के पेड़ों की संख्या काफी कम हो गई है। चिला के पत्तों से थाली, कटोरी बनाकर लोग अपना गुजारा कर लेते थे। इसी प्रकार खजूर का पेड़ भी काफी उपयोगी था। उसके पत्तों से लोग पंखे, चटाई वगैरह बना लेते थे और उसकी लकड़ी छत बनाने के काम में आती थी।

जल संसाधन :

पानी एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है जिससे मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों की जरूरत पूरी होती है। जलस्तर काफी तेजी से गिर रहा है। 30 साल पहले जिन कुँओं में 20 फीट पर पानी होता था अब वह गिरकर 50 फीट तक चला गया है। रासायनिक खाद और दवाईयों के चलते पानी की गुणवत्ता भी काफी कम हो गई है। यह पानी अब न खेती के लिए और न ही पीने के लिए सुरक्षित है। इस कारण से पिछले 4–5 सालों में कोई भी नए कुँए नहीं खोदे गए हैं। हालांकि नरेगा के तहत कुछ पुराने कुँओं को जरूर और गहरा किया गया है।

रोज़गार की सुरक्षा :

15–20 वर्ष पहले तक मुझे प्रति बीघा 8 क्विंटल ज्वार, 6 क्विंटल गेहूँ और 5 क्विंटल चना मिल जाया करता था। अब किसान औसतन प्रति बीघा 6 क्विंटल ज्वार, 4 क्विंटल गेहूँ और 3 क्विंटल चना प्राप्त कर रहे हैं, वो भी तब जब सिंचाई की सुविधा मुहैया हो। लोग अब बाजरा और मक्का के ज्यादा उपज देने वाले हाइब्रिड बीज खरीद रहे हैं। कम पानी वाले कथ्या गेहूँ के बदले लोग कम अवधि वाले बीज इस्तेमाल कर रहे हैं। कथ्या गेहूँ की फसल ऊँची होती थी और इसका चारा ज्यादा फायदेमंद था। आजकल की बाजरा किस्मों में चारा भी ठीक से नहीं निकलता।

आजकल लागत काफी तेजी से बढ़ रही है और आमदनी उसी रफ्तार से घटती जा रही है। किसान अब बाजार के हिसाब से फसल लगा रहे हैं। दोनों फसलों को मिलाकर मुझे साल भर में लगभग 10,000 रुपये की लागत आती है। इस साल सूखे के कारण मेरी फसल नष्ट हो गई। थोड़ी-सी मूँगफली हुई और थोड़ा चारा बन पाया जिसकी कुल कीमत 6000 रुपये के बराबर है। मेरी लागत भी नहीं निकल पाई मुनाफा तो दूर की बात है। पिछले कुछ सालों में सफेद सूंडी कीड़ों की मात्रा काफी बढ़ गई है।

इस क्षेत्र में लोग आजीविका के लिए मुख्य रूप से कृषि और पशुधन पर आधारित हैं लेकिन मौसम में बदलाव ने खेती की लागत और पशुधन पर बुरा असर डाला है। मजबूरीवश लोग अब दिहाड़ी मजदूरी करने लगे हैं। लगातार सूखे के कारण लोग कर्जे में भी डूबते जा रहे हैं।

पारम्परिक ज्ञान :

लोगों ने सदियों से अपने अनुभव द्वारा प्रकृति को बेहतर रूप से समझा है व इसके संकेतों को पहचाना है। धीरे-धीरे जो ज्ञान विकसित हुआ है वह हमारी परंपरा का हिस्सा बनता गया। प्रकृति समय रहते ऐसे संकेत देती है जिसकी मदद से हम अपने जीवन और आजीविका का समय रहते बेहतर प्रबंधन कर पाते थे। अब यह ज्ञान नष्ट हो रहा है क्योंकि नई पीढ़ी अब मौसम के पूर्वानुमान के लिए बाहरी एजेंसी पर निर्भर हो रही है।

पिछले 30–40 वर्षों से मेरे गाँव के लोग पूर्ण रूप से कृषि पर आधारित थे। अब रोजगार की कमी होने के कारण लोग पलायन कर रहे हैं। मेरे गाँव में पिछले कुछ सालों में पलायन दोगुनी रफ्तार से बढ़ा है। गाँव में अकुशल रोजगार अब बिल्कुल नहीं मिल पाता। नरेगा भी पर्याप्त रोजगार उत्पन्न नहीं कर पाया है।

मौसम के बदलाव का ग्रामीणों और खासतौर पर ग्रामीण किसानों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। ऐसे में सरकार को हम लोगों की मदद करनी चाहिए। गाँव में रोजगार उत्पन्न करने के प्रयास किये जाने चाहिए ताकि पलायन कम हो सके। चारा डिपो खुलने चाहिए जहाँ से किसानों को सस्ते दामों में चारा उपलब्ध कराया जा सके।

नाम : भानुदास नेमाने, सुरेश तले व अन्य ग्रामीण

16

उम्र : 35–65 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : ग्राम-शिर्ला, ब्लॉक-खामगांव, जिला-बुलढाणा (महाराष्ट्र)

किसानों की खत्म होती स्वाबलंबिता व आत्मनिर्भरता

बुलढाणा जिला एक समय में प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर था। आज इसे लोग अकाल ग्रस्त व पिछड़े प्रदेश के रूप में जानते हैं। भारत सरकार ने भी इसे अति-गरीब जिले के रूप में घोषित कर दिया है।

शिर्ला गाँव जिला पंचायत बुलढाणा से 70 कि.मी. और ब्लॉक मुख्यालय खामगांव से 30 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह गाँव कपास के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ करीब 600 परिवार बसते हैं जिनमें से अधिकांश अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व पिछड़े वर्ग समुदाय से हैं। सदियों से लोग अपनी आजीविका का निर्वाह खेती, खेती मजदूरी और वनोपज के माध्यम से करते आ रहे हैं। पिछले 10–15 सालों में पर्यावरण परिवर्तन का किसान की आजीविका पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।

वर्षा की अनियमितता एवं कमी :

पिछले 7–8 सालों तक 7 जून के आसपास बारिश हो जाया करती थी जो कि सितम्बर माह तक चलती थी। अब ऐसा नहीं है। जून-जुलाई में बारिश नहीं के बराबर होती है। अगर पास के गाँव - आंबेटाकली में बारिश होती है तो यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे गाँव में भी पानी बरसेगा। खेती पर इस अनियमितता का काफी विपरीत प्रभाव पड़ा है।

उपज व बीज के प्रकार में बदलाव :

जब फसल पकने वाली होती है तो बारिश अवकाश पर चली जाती है। इस कारण से 2009 में सोयाबीन की पैदावार काफी कम हुई। जनवरी या फरवरी तक कपास का संग्रहण होता था, अब नवम्बर तक ही कपास लगने बंद हो जाते हैं। परम्परागत बीज पानी मिलने पर ज्यादा समय तक उपज देते थे। अब उपज क्षमता काफी कम हो गई है। किसानों को मजबूरीवश जल्दी उपज देने वाले बीज का इस्तेमाल करना पड़ रहा है, जिनकी रोगों से लड़ने की क्षमता भी पारम्परिक बीजों

से कम है। बीजों में बदलाव के कारण किसानों की स्वावलंबिता और आत्मनिर्भरता में गिरावट आई है। महँगे बीज इस्तेमाल करने के कारण ये कर्ज में भी डूबते जा रहे हैं।

पशुपालन पर खतरा :

10 साल पहले तक गाँव से लगा हुआ जंगल था, जहाँ से जानवरों के लिए चारा मिल जाया करता था। उस समय हर परिवार के पास जानवर थे। अब जानवरों की संख्या एक चौथाई से भी कम रह गई है। पशुपालन पर आश्रित परिवारों को अब भूखा रहने की नौबत आ गई है। जंगल कम होने का असर जंगली जानवरों पर भी पड़ा है। ये जानवर अक्सर जंगल से निकलकर गाँव में चले आते हैं व फसल के साथ-साथ जान-माल का भी नुकसान करते हैं।

वन उत्पाद में कमी :

जंगल कटने का अर्थ है वन उत्पादों में भी कमी आना। पहले गाँव के करीब 10 प्रतिशत लोग जंगलों के माध्यम से अपनी आजीविका चलाते थे। खासतौर पर तेन्दूपत्ता और सूखी लकड़ी से कई परिवार अपना निर्वाह करते थे। अब इनमें से अधिकांश परिवार कारखाने के मजदूर बनकर शहर की मलीन बस्तियों में अपना गुजारा कर रहे हैं।

कृषि व्यवसाय के प्रति उदासीनता :

सोना उगलने वाली जमीन सैकड़ों परिवारों को आजीविका प्रदान करती थी। आज इस जमीन की उपज क्षमता पर किसी को भरोसा नहीं रह गया है। बदलते परिवेश में लोग खेती के प्रति उदासीन दिख रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण खेती में लगातार नुकसान हो रहा है। लोग अपनी खेती को छोड़कर निजी नौकरी की तरफ भाग रहे हैं। आज एक लड़की का पिता 1000–1200 रुपये कमाने वाले चपरासी या चौकीदार के साथ अपनी बेटी का ब्याह कर देगा लेकिन 10–20 एकड़ की खेती वाले के साथ शादी करने में सौ बार सोचेगा।

किसान की आत्महत्या :

शिर्ला गाँव में तो नहीं पर पूरे विदर्भ में किसान की आत्महत्या का दौर चल रहा है। किसान की आत्महत्या के अनेक कारणों में एक कारण बरसात की अनियमितता एवं इससे होने वाले आर्थिक, सामाजिक और मानसिक प्रभाव हैं। किसानों की आत्महत्या हमारे समाज की हार है।

नाम : छोटेलाल

उम्र : 32 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

समुदाय : गूजर

पता : ग्राम-बंधवा, पोस्ट-मतवार, वि.ख.-हलिया, जिला-मिर्जापुर

17

जलवायु परिवर्तन का पशुधन पर प्रभाव

पशुधन समुदाय की आजीविका का प्रमुख स्रोत हैं। इनका उपयोग कृषि कार्य तथा व्यवसाय दोनों रूपों में किया जाता रहा है, जैसे - जुताई, सिंचाई, मड़ाई, ढुलाई, यातायात, जैविक खाद, खाद्य पदार्थ, ईंधन इत्यादि। जलवायु परिवर्तन का असर पशुधन पर भी स्पष्ट रूप से देखने को मिल रहा है।

खेती और पशु एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं। खेती से पशुओं को चारा-भूसा होता है तथा पशुओं से जैविक खाद हेतु गोबर मिलता था, जिससे खेती अच्छी हो जाती थी तथा उसमें लागत बहुत कम लगती थी। जैविक खाद से पैदा होने वाला अनाज शुद्ध एवं पौष्टिक होता था। आजकल जलवायु परिवर्तन का खेती पर विपरीत प्रभाव पड़ा है जिससे चारा स्वाभाविक रूप से नहीं उग रहा है। खाद्यान्न कम पैदा होने के कारण लोगों के पास अधिक पशुओं को रखने की क्षमता नहीं रह गई है, जिससे पशुधन में कमी आई है। इसका दूसरा कारण बढ़ती आबादी एवं घटते वन एवं चारागाह भी हैं। इसके कारण पशुओं को पर्याप्त मात्रा में चारा एवं भूसा नहीं मिल पा रहा है। रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के प्रयोग के कारण उससे पैदा होने वाला चारा एवं भूसा जहरीला होने के कारण पशु उसे नहीं खा पाते हैं जिससे पशु प्रायः कमजोर व बीमार रहते हैं तथा कम समय में ही मर जाते हैं। वातावरण में बढ़ती गर्मी तथा प्रदूषण ने इनके स्वास्थ्य को प्रभावित किया है। पर्यावरणीय असंतुलन के कारण भी पशुओं की संख्या में गिरावट आई है।

बिगड़ती कृषि पद्धति और पशुओं की संख्या में आई गिरावट से पर्यावरण भी प्रभावित हुआ है। अनेक प्रकार के पशु, पक्षी एवं मित्र कीटों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से जल, जमीन एवं वातावरण सभी प्रदूषित हुए हैं। शुद्ध पेय जल एवं खाद्यान्न का संकट उत्पन्न हो गया है तथा अनेक प्रकार की नई-नई बीमारियाँ पैदा हो रही है। पशुधन प्रभावित होने से लोगों की आमदनी घटी है। आमदनी घटने से लोगों की क्रय शक्ति प्रभावित हुई है क्योंकि पशुधन का उपयोग कृषि के साथ-साथ व्यवसाय के रूप में भी किया जाता रहा है, जिससे आसानी से हम सबको अतिरिक्त आय हो जाती थी।

मध्यप्रदेश

नाम : देवकाबाई भूरिया

उम्र : 45 वर्ष

व्यवसाय : कृषि/वनोपज

समुदाय : आदिवासी

पता : ग्राम-लोगरपुरा, जिला-धार (मध्यप्रदेश)

18

मौसम का बदलाव और आदिवासी सभ्यता

मध्य प्रदेश, राजस्थान और गुजरात की सीमाओं पर देश के एक बड़े क्षेत्र में आदिवासी बसते हैं। म.प्र. के मालवा एवं निमाड़ क्षेत्र के भील-भीलाला आदिवासी सदियों से वन क्षेत्रों में रहकर अपना जीवन-यापन कर रहे हैं। झाबुआ और धार जैसे अनुसुचित क्षेत्रों में यह समुदाय वन एवं वनोपज से अपना पूरा जीवन सरलता, सहजता एवं सामुदायिकता की भावना से गुजार लेता था। लेकिन पिछले 50–60 सालों में मौसम में आ रहे लगातार बदलाव और प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण आदिवासी सभ्यता खत्म होने की कगार पर है।

उजड़ते वन तथा प्रतिकूल मौसम की मार ने वनोपज पर भारी विपरीत प्रभाव डाला है। खिरनी की पैदावार से क्षेत्र के हजारों परिवार दो माह में ही इतना कमा लेते थे कि उनका 4–5 माह काम चल सके। अब मुश्किल से 8–10 दिन का रोजगार मिल पाता है। गोंद, कत्था, महुआ, तेंदू पत्ता जंगलों से गायब हो गया है। जड़ी-बूटियाँ नदारद हैं। रोशा घास एवं मूसली जैसी उपयोगी वनस्पति ढूढ़े नहीं मिल रही है।

पिछले 50 सालों में अनियमित और अनियंत्रित वर्षा, ठंड व गर्मी से जंगलों की दशा बदतर होने के कारण आदिवासियों का रुख जंगलों की बजाय खेती की ओर हुआ। लेकिन आदिवासी क्षेत्रों की ऊँची-नीची, ढालू, मुरम युक्त हल्की जमीनें बदलते मौसम के थपेड़ों को सहन नहीं कर पाईं। हल्की तथा कम खाद-मिट्टी वाली भूमि से आदिवासी मक्का, मूँगफली, राई, सरसों, कोदो, कुटकी, रागी जैसी फसलें लेकर अपना जीवन-यापन करने पर मजबूर ये आदिवासी उससे भी वंचित हो गए हैं। असामयिक वर्षा, समय चक्र में बदलाव, वर्षा दिनों में परिवर्तन, अनियमित वर्षा दिवस अंतराल का बरसाती फसलों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। यदि कहीं अल्प संख्या या मात्रा में संसाधन उपलब्ध भी है तो वे संपन्न लोगों या अन्य समाज के कब्जे में हैं। उपजाऊ क्षेत्रों की खेती का 25 प्रतिशत से भी कम उत्पादन करने वाले इन आदिवासियों को बीज भी वापस नहीं मिलता। जंगल से खेती में आने वाले ये आदिवासी आखिरकार रोजगार की तलाश में पलायन को मजबूर हुए। मौसम के बदलाव के थपेड़ो से पीड़ित यह समुदाय रोजगार की तलाश में यहाँ-वहाँ भटकने के कारण अपनी

सभ्यता, संस्कृति और परंपराओं के साथ-साथ अपनी पहचान को भी खो रहा है। अनुकूल मौसम व प्राकृतिक परिस्थितियों के चलते लोगों को सेहत व स्वास्थ्य के लिए अचूक वनोपज उपलब्ध कराने वाला यह समाज खुद कुपोषण, रोग, बीमारीयों की चपेट में आ गया है। आदिवासियों को रोजगार मिलना दुर्लभ होता जा रहा है। परिणामस्वरूप आज का आदिवासी रोजगार गारण्टी कानून की ओर आकर्षित हुआ है लेकिन हर जगह शोषित इस समाज को यहाँ भी न्याय नहीं मिल रहा।

आदिवासी संस्कृति व सभ्यता ही जंगलो का संरक्षण व प्रबंधन करने में सक्षम है। जरूरत है सिर्फ उनको समझने और समुचित सहयोग करने की। वन अधिकार अधिनियम और इस जैसे अन्य कानूनों को धनात्मक सोच के साथ ईमानदारी से लागू करने तथा पर्यावरण संरक्षण एवं प्राकृतिक संसाधन विकास जैसे प्रकल्पों में आदिवासी समुदाय का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त कर मौसम परिवर्तन के दुष्परिणामों से बचा जा सकता है।

नाम : सोनालाल प्रसाद गौंड व ममता कुमारी गौंड

19

उम्र : 40 व 21 वर्ष

व्यवसाय : कृषि समुदाय : गौंड

पता : ग्राम-लाइन कटघरवा, पंचायत-राजभसुराड़ी, प्रखण्ड-नरकटियागंज, जिला-पश्चिम चम्पारण (बिहार)

पश्चिम चम्पारण में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से स्वास्थ्य, कृषि, पशुपालन, रोजगार, पर्यावरण, शिक्षा पर बहुत ही बुरा असर पड़ा है। आज से 20 वर्ष पूर्व सामान्य मौसम हुआ करता था जिसमें समय से बारिश, समय से जाड़ा और समय से गर्मी पड़ती थी। किसी भी नहर, बोरिंग, बिजली की कोई खास आवश्यकता कृषि के लिए नहीं पड़ती थी। धान समय से लग जाता था। धान की अनेक किस्में जैसे कि सारो, गर्मा, अगहनी, बासमती इत्यादि प्रत्येक किस्म की फसल उगती थी क्योंकि समय से जुलाई माह में मानसून आ जाता था तथा सितम्बर माह तक लगातार पानी गिरता रहता था। इस कारण सभी किस्म की धान को पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था और फसल के अन्दर घास व तरह-तरह की कीटाणु नहीं पनप पाते थे। सारे खेतों में पानी भरा रहता था। पानी के भरे रहने से मछलियाँ खेतों में आती थीं, समय से अण्डे/बच्चे देती थीं और धान की फसल में होने वाले, नुकसान करने वाले कीट को खाती थीं। मछलियाँ मिट्टी (पाँक) में चर-चर कर मिट्टी को भुरभुरा बना देती थीं जिससे फसल अच्छी होती थी। तरह-तरह के पक्षी खेतों में आते थे जो साँप, केंकड़ा, गोहठी आदि हानिकार जन्तुओं का खाकर उन्हें मिटा देते थे। खेतों में मेंढक बहुत होते थे जो मच्छर-मक्खियों को खा कर खत्म कर देते थे जिसकी वजह से धान की पैदावार अच्छी होती थी। अब मौसम में काफी परिवर्तन हो गया है, जैसे कभी कम बारिश होती है और कभी अधिक बारिश हो जाती है। जिसके कारण तरह-तरह की बीमारियों वाले कीड़ों की संख्या बढ़ गई है जिससे फसल और स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा है।

पहले फसल अच्छी होने के कारण पशुओं की संख्या भी अधिक होती थी। पशुओं के गोबर से जलावन बनाने का काम लिया जाता है। गोबर खेत में मवेशी खाद के रूप में डालते हैं तो अनाज की पैदावार बढ़ जाती है। परंतु पशुओं की संख्या कम होने से अब यह संभव नहीं हो पाता है। जब सूखा पड़ जाता है तो जलावन, जो पुआल झाड़ी आदि से प्राप्त किया जाता है वह नहीं मिलता तो लोग पेड़ काटना तथा जलाना शुरू कर देते हैं जिससे पर्यावरण दूषित होने लगता है और स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

मैने इस साल अपने गाँव में खेती के समय लगभग दो एकड़ में अच्छी किस्म की (बासमती) धान लगाई थी, सोहनी खाद भी डाली पर समय से पानी नहीं गिरा तो लगभग 60 प्रतिशत धान की फसल सूख गई।

फसल नहीं होने के कारण रोजगार घट जाता है और लोग रोजगार के लिए शहर की तरफ पलायन करते हैं। घर में सिर्फ महिलाऐं रह जाती हैं। आज के समय में खेती में अपना ज्यादा समय महिलाऐं देती हैं। पहले बीज उखाड़ना, कुदाल चलाना, सोहनी करना, धान की कटनी करना, धान ओसवनी करना पुरुष किया करते थे, महिलाऐं सिर्फ रोपनी करती थीं लेकिन अब पुरुष के रोजगार के लिए शहर चले जाने के कारण ये सारे काम महिलाओं के सिर पर आ गया है।

मैंने एक बात बहुत नजदीक से महसूस की है कि पश्चिम चंपारण जिले में 40 प्रतिशत जंगल/पहाड़ हैं, जहाँ बिहार के हर जिले से ज्यादा आदिवासी रहते हैं जो ज्यादातर अशिक्षित मजदूर हैं। इनके पास 1 प्रतिशत जमीन है जो जंगल पहाड़ काटकर बनाई गई है। यह जमीन काफी टेढ़ी-मेढ़ी, ऊँची-नीची, पथरीली भूमि है जो सिर्फ मौसम पर निर्भर है। वहाँ सरकार द्वारा किसानों को दी जाने वाली सुविधाऐं जैसे नहर, बिजली आदि कुछ भी नहीं है। ये लोग सिर्फ प्रकृति के भरोसे हैं। अगर समय से मानसून नहीं आया, बारिश नहीं हुई तो इनकी फसल नहीं होती और न ही किसानों के खेत में इन्हें रोज़गार मिलता है। इनके मवेशियों के लिए चारे की भारी कमी पड़ जाती है। अधिक गर्मी पड़ने से पहाड़ का पत्थर गर्म हो जाता है जिससे गर्मी के कारण तरह-तरह की बीमारियाँ होने लगती हैं। स्वास्थ्य केन्द्र नजदीक न होने के कारण इनकी मौत हो जाती है।

मौसम बदलाव से पश्चिमी चम्पारण जिले में आदिवासियों के जन-जीवन पर सबसे ज्यादा सीधी मार पड़ी है। ये आदिवासी पत्थर के खदान में काम किया करते थे मगर सरकार ने इन खदानों का लीज बंद करके इनके रोजगार का यह अवसर भी खत्म कर दिया है।

नाम : इन्दर सिंह बुन्देला

उम्र : 45 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

समुदाय : भील आदिवासी

पता : ग्राम पंचायत सिमरौल, जिला इन्दौर

20

बदलते मौसम से मालवा-निमाड़ की बिगड़ती खेती

चार-पाँच दशक पूर्व तक हमारे कृषि प्रधान देश के केन्द्र में बसे मध्यप्रदेश का मालवा एवं निमाड़ क्षेत्र विश्व में अपनी एक पहचान रखता था। ''मालव धरती गहन गम्भीर, डग-डग रोटी, पग-पग नीर'' की कहावत को चरितार्थ करता मालवा और श्वेत फसल कपास के लिए मशहूर निमाड़ के आदिवासी आज भरपेट राशन के लिए भटकने लगे हैं तथा किसान कर्ज से दबते जा रहे हैं और जमीनें बेचकर मजदूरी करने को विवश हो गये हैं।

किसी समय बरसात-ठंड-गर्मी संतुलन और मौसम के अनुकूल मिजाज के परिणाम से मालवा में जब कपास की फसल आती थी तो न्यूयार्क (अमेरिका) के कपास बाजार में हलचल होने लगती थी तथा इस क्षेत्र के आदिवासियों के घर पूरे वर्ष के लिए धन्य-धान्य से भर जाते थे। जहाँ कपास नहीं बोते थे वहाँ धान या गेहूँ-चना इतना होता था कि गोदाम भर जाया करते थे। समय पर भरपूर बरसात कपास व धान फसलों को भरपूर बढ़ाती थी, वहीं क्वांर की गर्मी और समय पर पड़ने वाली ठंड गेहूँ-चने से क्षेत्र को पाट दिया करती थी। घड़ी की सुई के अनुसार नियमित व सामायिक मौसम फसलों पर बहुत ही अच्छा प्रभाव डालते थे।

मुर्गे की बांग हो या रोहणी की बरसात, रूईदार बादलों का बहाव दिखे या कोयल की कुहू-कुहू या मेंढक की टर्र-टर्र, चींटी ले अण्डा चढ़े या हों गाय के कान खड़े - हर परिवर्तन मौसम की सूचना देता था और लोग खुशी से रहते थे। पैसे के पीछे दौड़ने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। आषाढ़ की बोनी तीन दिन और सयाले की तेरह दिन में पूरी करने के लिए मौसम व प्रकृति भरपूर सहयोग करते थे।

पहले ''का बरखा जब कृषि सुखाने'' की कहावतें जो आदमी की कल्पनाशीलता बखान करती थीं वही आज हर वर्ष लागू होती हैं। पहली बरसात में बोए गए बीज 30—40 दिन का सूखा होने से अंकुरित होकर सूख जाते हैं, फिर इतनी ज्यादा वर्षा होती है कि बोनी देर से भी नहीं कर पाते। बारसाती फसलें लेना युद्ध जैसा हो गया है। पहले क्वांर की गर्मी चने की पैदावार में और

दिसंबर के पहले की ठंड आलू की पैदावार में 10 गुना वृद्धि करती थी, वहीं आज चना परिदृश्य से ही गायब हो रहा है तथा जनवरी के बाद या हर कभी पड़ने वाला पाला फसलों में रोग-बीमारियाँ फैलाता है। उत्पादन लागत बहुत अधिक होने के बाद भी आलू का उत्पादन 10 से गिरकर 3–4 गुना हो जाता है, 60 से 70 क्विंटल प्रति हैक्टेयर गेहूँ उत्पादन घटकर 20–25 क्विंटल पर ही अटक जाता है। रबी फसलों को जीवन देने वाली ठंड तो नदारद हो गई है। जम्मू क्षेत्र में हर कभी गिरने वाली बर्फ के कारण आने वाली शीत लहरें फसलों को लाभ कम नुकसान ज्यादा दे रही हैं। हमारे क्षेत्र से चना, राई, बटला, गन्ना जैसी फसलें गायब होती जा रही हैं और बरसात में धान, कपास, मक्का, ज्वार, अरहर बोना ही बंद हो रहा है। मौसम के बदलाव से भरपेट भोजन के लिए भी दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। पिछले 50 सालों में लगातार बदल रहे मौसम व मौसम चक्र के कारण खेती घाटे का सौदा बन गई है।

आज जरूरत इस बात की नहीं है कि अनुदान पर अनुदान बढ़ाने की घोषणा की जाए, कर्ज मुक्ति या ब्याज में छूट जैसे लुभावने वादे किये जाऐं और बुनियादी ढ़ाचो के विकास या रोजगार गारण्टी योजना चलाकर एक आम आदमी को आक्सीजन पर रखने का प्रदर्शन किया जाए। जरूरत इस बात की है कि हर स्तर पर ईमानदार प्रयास किए जावें और मौसम के बदलाव के लिए जिम्मेदारियाँ निर्धारित कर उसके अनुकूल प्रकृति में संतुलन लाने के सामुहिक प्रयास हों।

किसानी को सुरक्षा और किसानों को उचित मार्गदर्शन और सहयोग मिलना चाहिए। योजनाकार क्रियान्वयन के समय अपनी सोच में बदलाव लाकर जमीनी परिस्थितियों के अनुसार कार्य करेंगे तो ही प्रकृति संतुलन में किसान एवं आदिवासियों की मेहनत का भरपूर उपयोग हो सकेगा।

नाम : शेखर शर्मा
उम्र : 30 वर्ष
व्यवसाय : सामाजिक कार्यकर्ता
पता : ग्राम-भदौरा जागीर, जिला-गुना (म.प्र.)

21

रेगिस्तान की दस्तक

मैं शेखर शर्मा भदौरा गाँव, जिला गुना का निवासी हूँ। पेशे से मैं पहले पूजा-पाठ किया करता था पर अब एक सामाजिक कार्यकर्ता भी हूँ। गुना जिला ग्वालियर संभाग का एक छोटा सा हिस्सा है। मैं आपको इसी संभाग की दास्तान सुनाने जा रहा हूँ जहाँ जलवायु परिवर्तन के चौंका देने वाले तथ्य सामने आए हैं।

यह क्षेत्र पिछले दो दशकों से लगातार सूखे का शिकार रहा है। यहाँ आज से चार दशक पूर्व सघन वन क्षेत्र हुआ करता था। दो दशक पूर्व तक इस क्षेत्र की जलवायु सामान्य थी किन्तु 90 के दशक से यहाँ जलवायु के असामान्य होने के लक्षण सामने आने लगे।

यहाँ की भूमि में अब नमी धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। नागफनी, बबूल और बेर जैसे कांटेदार पेड़-पौधे फैल रहे हैं। खेतों की मिट्टी में रेत के कणों की मात्रा बढ़ती जा रही है। इसके साथ-साथ गोह, छिपकली और सांडा जैसे सूखे इलाकों में पाए जाने वाले जंतुओं की संख्या बढ़ रही है।

गुना, श्योपुर एवं शिवपुरी क्षेत्र में दूसरे क्षेत्रों से आकर भील एवं गौंड समुदाय बड़ी मात्रा में बस रहे हैं। अपने बसने के लिए ये भारी मात्रा में जंगल काट रहे हैं। अब यहां का वन क्षेत्र एक चौथाई से भी कम रह गया है, जिससे प्राकृतिक संसाधनों का काफी नुकसान हो रहा है।

वनों के विनाश का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव पानी के संकट के रूप में पड़ा है। इस क्षेत्र में पिछले एक दशक में जलस्तर 5—6 मीटर तक स्थाई रूप से नीचे गिर गया है। जल संकट का एक कारण यह भी है कि किसान अधिक पानी वाली फसलों का अधिक उत्पादन करना चाहते हैं जबकि पानी वहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। किसान नलकूपों से ज्यादा से ज्यादा पानी खींचे जा रहे हैं जबकि यहाँ की मिट्टी की बनावट इस प्रकार की नहीं है कि भूजल की भरपाई हो सके। इस क्षेत्र की बनावट भी असमतल है जिससे वर्षा का पानी भूमि पर अधिक समय तक नहीं रूकता।

वनों की कटाई का एक दुष्प्रभाव यह भी हुआ है कि वर्षा का पानी अब सीधे जमीन पर गिरने लगा है जिससे मिट्टी का कटाव होने लगा है। असमतल भूमि और वृक्षों की कमी के कारण

आज बहुत सी भूमि मिट्टी-विहीन होकर अनुपजाऊ हो गई है। कई गाँवों में अब पूरी की पूरी भूमि से मिट्टी बह गई है व वहाँ की जमीन पथरीली व अनुपजाऊ बनकर रह गई है।

इस क्षेत्र के जंगलों की जड़ी-बूटियाँ काफी प्रसिद्ध हैं। आयुर्वेदिक दवाओं की कई कंपनियाँ, जैसे - डाबर, झण्डु एवं वैद्यनाथ यहीं की जड़ी-बूटियों से दवा बनाते हैं। यहाँ की जड़ी-बूटियाँ पूरे देश भर में जाती हैं। यहाँ करीब 54 विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियाँ पाई जाती हैं जिनसे कई प्रकार की दवाइयाँ बनाई जाती हैं। किन्तु जंगलों के लगातार कटने के कारण यहाँ के जंगलों में पाई जाने वाली वनस्पतियाँ या तो लुप्त हो चुकी हैं या लुप्त होने की कगार पर हैं।

यहाँ के मूल निवासी सहरिया जनजाति के लोग हैं। इनकी आजीविका जंगल पर आश्रित थी क्योंकि ये जंगल से प्राप्त जड़ी-बूटियों एवं वनोपज से अपना निर्वाह करते थे। जंगलों के कटने के कारण इनकी आजीविका के साधन समाप्त होने के कगार पर हैं। इन स्थितियों ने इन्हें अब अपनी भूमि से पलायन करने को मजबूर कर दिया है।

इसलिए देखा जाए तो जलवायु परिवर्तन के पीछे और कोई नहीं हम खुद हैं। बिना सोचे-समझे हम अपने छोटे से फायदे के लिए पूरे समाज और विश्व का नुकसान किये जा रहे हैं।

नाम : रामधन बाजरे व कैलाश पोलाखरे **22**

उम्र : 36 व 42 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : ग्राम-केदार, तहसील-नांदुरा, जिला-बुलढाणा (महाराष्ट्र)

बुलढाणा जिला (महाराष्ट्र) में जलवायु परिवर्तन

बुलढाणा एक पिछड़ा जिला है। यहाँ सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं है जिसके कारण से अब पीने के पानी की भी समस्या उत्पन्न हो रही है। व्यवसाय के अवसर न के बराबर होने के कारण पूरे जिले में बेरोजगारी की धारा बहती है। नतीजतन लोगों की पूर्ण निर्भरता खेती पर है। नांदुरा तहसील के केदार गाँव में जलवायु परिवर्तन का अधिक प्रभाव नजर आ रहा है।

इस गाँव के रामधन बाजरे के अनुसार जलवायु परिवर्तन से समुदाय के स्वास्थ्य एवं आजीविका पर निम्नलिखित प्रभाव हुआ है -

- पिछले 4–5 सालों से बरसात की अनियमितता के कारण किसानों को अक्सर बीज दोबारा बोना पड़ता है जिससे खेती पर लागत काफी बढ़ गई है।
- बरसात की अनियमितता के कारण कम कालावधि की फसल जैसे तिल, उड़द, मूँग की फसल लेने में समस्या पैदा हो रही है। इस वजह से किसानों को आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ता है।
- पिछले कुछ वर्षों में गाँव भर में 8 आम के पेड़ सूख चुके हैं। इस साल अति गर्मी के कारण मेरे आम के पेड़ में फल नहीं लगे।
- बरसात कम होने के कारण पीने के पानी की समस्या उत्पन्न हो गई है। जनवरी माह के बाद से 3–4 कि.मी. दूर से पानी लाना पड़ता है। इस वजह से खासतौर पर महिलाओं को काफी दिक्कत होने लगी है।
- आजकल कुछ बीमारियाँ काफी फैल गई हैं जैसे - गैस्टो, चिकनगुनिया या सारखी बीमारियों में काफी वृद्धि हुई है। 2008 के अप्रैल माह में गाँव के करीब 50 लोगों को गैस्टो हुआ था। छोटे बच्चों को काजण्या, गोबर जैसी गंभीर बीमारियों ने पकड़ा है।
- आजकल गर्मी काफी बढ़ गई है जिसके कारण 9 बजे के बाद खेत में काम करना

संभव नहीं है। लोग 9 बजे तक वापस घर चले आते हैं।

- खेती में बिना कपड़े कार्य करने से गर्मी के कारण शरीर पर छाले पड़ रहे हैं।
- दूध देने वाले जानवरों पर अधिक प्रभाव नजर आता है। हमारे घर के दूध देने वाले जानवरों, जैसे गाय, बकरी आदि की क्षमता काफी कम हो गई है।

नाम : मोतीलाल चंद्रवंशी, घीसीलाल, रामसिंह चंद्रवंशी, रोहित परमार, श्यामलाल लोधी

23

उम्र : 30 से 90 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : जिला सीहोर (मध्यप्रदेश)

बिन पानी सब सून

आज से 30–40 वर्ष पहले मौसम का समय बड़ा निर्धारित था। वर्षा मई-जून के महीने से शुरू हो जाती थी और क्वांर के महीने तक पर्याप्त वर्षा होती थी जिसकी वहज से फसल चक्र प्रभावित नहीं होता था। कम लागत में फसल अच्छी पैदावार देती थी। लेकिन अब मौसम बदलने से औसत वर्षा भी नहीं हो रही है जिसके चलते फसल चक्र पूरी तरह से प्रभावित हो गया है। आज किसान मौसम के बदलने से कर्ज में डूबता चला जा रहा है क्योंकि बे-मौसम वर्षा होने की वजह से कभी फसल उगती नहीं है और कभी ठीक से हो जाए तो बारिश इतनी हो जाती है कि पकी-पकाई फसल सड़ जाती है। दूसरा, मौसम के बदलने से फसलों में बीमारियाँ बहुत होने लगी हैं और फसल बांझ हो जाती है। फसलों को बचाने के लिए किसानों को बहुत से कीटनाशक खेत में डालना पड़ रहे हैं। किसानों को कीटनाशक डालने से दो तरह का नुकसान हो रहा है - एक तो खेती की लागत बढ़ गई है, दूसरे जमीन खराब हो रही है और अब हर साल उत्पादन क्षमता में कमी आ रही है। इसके अलावा जितनी भी सब्जियाँ पैदा हो रही हैं वह शरीर को नुकसान पहुँचा रही हैं। मौसम बदलने से अब किसान का खेती से गुजारा करना बहुत मुश्किल हो गया है।

किसान कहते हैं कि अगर मौसम में सुधार नहीं हुआ तो बेमौसम वर्षा और तपती धूप आम आदमी के लिए और मुसीबत लेकर आने वाली है। वो इसलिए कि जब फसल चक्र ही पूरी तरह चौपट हो जाएगा तो खाद्य आएगा कहाँ से? खासकर तब जबकि फसल का उत्पादन घट रहा है और खेती में लागत बढ़ रही है साथ में खेती को लेकर असुरक्षा भी बढ़ रही है। किसानों के अपने पिछले 5 से 6 वर्षों के अनुभव के अनुसार इन वर्षों में पकी हुई फसल भी अधिक वर्षा होने की वजह से खेत में ही सड़ चुकी है और कई बार पानी न बरसने की वजह से बोनी भी नहीं हो सकी। इस तरह फसल दोनों ही स्थितियों में हाथ में नहीं आ रही है। पिछले तीन वर्षों से खेती कम वर्षा होने की वजह से हो ही नहीं रही है, जिसकी वजह से कुछ खाद्य सामग्री, जैसे दाल, सब्जियाँ, दूध आदि की कमी तो अभी से होने लगी है।

आज सबसे बड़ा संकट पानी की सुरक्षा और उसकी उपलब्धता को लेकर है। पूरा ग्रामीण

समाज चाहे वह किसी भी वर्ग का हो पानी के गिरते जल स्तर से बहुत बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। पानी की कमी होने से किसान का जीवन ही रुक सा गया है। न तो उसकी खेती हो पा रही है और न ही जानवरों को चारा और पानी की जरूरत पूरी हो पा रही है। जिसकी वजह से किसान की आजीविका और पीने के पानी की जरूरत दोनों ही प्रभावित हो रहे हैं। गाँव में पानी का जल स्तर हर साल गिरता जा रहा है। पहले कुँआ खोदते थे तो 30 फिट पर ही पर्याप्त पानी मिल जाता था, जिससे हम खेती और पीने के पानी की जरूरत पूरी कर लेते थे। लेकिन अब तो 200 फिट तक हमें पानी नहीं मिलता है। पानी खोजने में ही हमारा बहुत सा पैसा बर्बाद हो जाता है और पानी की समस्या हल भी नहीं होती।

आज हालात ऐसे हो गए हैं कि किसान अपने जानवर, जो उसके पास सालों से थे, कसाईयों को बेच रहे हैं और खुद भी अपने पुराने घर बेचकर दूसरी ऐसी जगहों पर जा रहे हैं जहाँ वे मानते हैं कि पानी के स्रोत हैं। लेकिन पानी की समस्या वहाँ पर भी खत्म नहीं हो रही है और इस तरह वह अपने संसाधन बेचकर और गरीब होता जा रहा है।

नाम : रामकृष्ण चौधरी

उम्र : 62 वर्ष

व्यवसाय : कृषि

पता : ग्राम-महाचंदपुरा, पंचायत-बदाली, ब्लॉक-चाकसू, जिला-जयपुर

24

चाकसू (राजस्थान) में जलवायु परिवर्तन

मेरे पास कुल 40 एकड़ भूमि है जिसमें से दस एकड़ में सिंचाई की सुविधा है और बाकी 30 एकड़ पूरी तरह से वर्षा पर आधारित है। मेरे परिवार में 10 सदस्य हैं। मेरे पास करीब 20 मवेशी है जिसमें से एक गाय है और बाकी की भैंसे हैं। महाचंदपुरा एक छोटा सा गाँव है जहाँ मात्र 42 परिवार बसते हैं।

जलवायु परिवर्तन के लिए हम सभी जिम्मेदार हैं। जलवायु परिवर्तन का कई चीजों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। इंसान से लेकर जानवर तक, कीट से लेकर कीड़े मकौड़े तक और यहां तक की मिट्टी की उर्वरक क्षमता पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। यही नहीं इसका असर मौसम के समय और अवधि पर भी पड़ा है।

जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारणों में से एक जंगलों का कटना है। पहले हमारे पास कई पेड़-पौधे होते थे पर लोगों ने इसे धीरे-धीरे काट डाला जिस कारण से अब वर्षा कम होती है और सूखा बार-बार आ रहा है। जंगलों के कटने से प्रदूषण भी काफी बढ़ा है जिससे बारिश और कम हुई है। पेड़ों के कटने से कई सारी वनस्पतियाँ जिनका औषधियों के रूप में इस्तेमाल होता था अब लुप्त हो रही हैं। अंततः चूँकि कभी भी नए सिरे से वृक्षारोपण नहीं किया गया है इसलिए अब टिंबर, ईंधन के लिए लकड़ी और जानवरों के रहने के लिए जंगल की कमी होने वाली है।

दूसरी बड़ा परिवर्तन यह है कि आजकल तापमान काफी बढ़ रहा है। हमारे यहाँ पहले पहाड़ काफी थे। लेकिन खुदाई कर करके लोगों ने पहाड़ियों को भी काफी नुकसान पहुँचाया है। जो बादल पहले पहाड़ों से टकराकर पानी बरसाते थे वे अब आगे निकल जाते हैं। वर्षा कम होने के कारण पीने के पानी की समस्या होने लगी है व उसमें प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। वर्षा कम होने से चेकडैम, मेड़बंदी, तालाब, एनीकट वगैरह भी काम के नहीं रहे। नदी में भी पानी पहले जैसे नहीं रहा जिससे क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ी है। और खाद्य संकट बढ़ा है।

पानी की कमी, तापमान में बढ़ोत्तरी और बीमारियों के फैलाव से पक्षियों की संख्या भी पहले

से काफी कम हो गई है। हमारा जो पारम्परिक ज्ञान था जिससे हम मौसम के बारे में पूर्वानुमान लगा लेते थे वह पक्षियों पर ही आधारित था। पक्षियों के न होने से अब वह ज्ञान अधूरा रह गया है। पक्षियों की कमी के कारण अब कीड़े ओर कीट काफी बढ़ गए हैं जो कि इन पक्षियों का प्रिय भोजन थे। इन कीटों द्वारा आज फसलों को काफी नुकसान पहुँचता है।

लोग आजकल रासायनिक खाद व दवाईयों का अंधाधुंध प्रयोग कर रहे हैं। इससे फसलों और जानवरों में जहर फैल रहा है। यह जहर इंसानों में भी फैल रहा है और नई-नई बीमारियां पनप रही हैं। इससे मिट्टी की उर्वरक क्षमता भी काफी प्रभावित हुई है। आजकल यह भी देखा गया है कि गिद्ध खत्म हो रहे हैं। ये गिद्ध मरे हुए जानवरों को खाकर पर्यावरण की सफाई का काम किया करते थे।

औद्योगीकरण के कारण काफी कारखाने बन गए हैं। कारें, जहाज और इस तरह की अन्य तकनीकों से जो प्रदूषण फैल रहा है उसका जलवायु परिवर्तन पर काफी प्रभाव पड़ रहा है।

नए विकसित बीजों (आनुवांशिक परिष्कृत बीज, Genetically Modified Seeds) ने हमारे पारम्परिक बीजों को खत्म कर दिया है। इससे जैव विविधता पर गहरा प्रभाव पड़ा है। नई बीजों के अनाज में स्वाद भी पहले जैसा नहीं रहा। इन बीजों में नई तरह की बीमारियां फैल रही हैं।

नाम : जाली बेन

उम्र : 52 वर्ष

व्यवसाय : पशुपालन

पता : ग्राम सुजपुरा, ब्लॉक देतरोज, जिला अहमदाबाद (उत्तरी गुजरात)

25

जलवायु परिवर्तन से पशुपालन की बढ़ती समस्याऐं

मैं उत्तरी गुजरात से हूँ, जहाँ हमारे समुदाय के लोग बड़े पशु जैसे गाय, भैंस और ऊँट आदि पशुओं को पालकर अपनी आजीविका चलाते हैं। यह क्षेत्र सफेद क्रान्ति से काफी प्रभावित रहा है परन्तु इसका कोई भी लाभ हमारे समुदाय के लोगों को नहीं मिला। असल फायदा कृषि पर आश्रित लोगों को ही पहुँचा है।

मेरी परवरिश मेरे मामा के घर पर हुई है। मेरी शादी बचपन में ही हो गई थी। जब मैं अपने ससुराल पहुँची तो हमारा परिवार काफी सुखी व समृद्ध था। हमारे पास 100 के करीब अच्छी नस्ल की गायें व ऊँट थे और 10 एकड़ की भूमि थी। कुछ साल तो अच्छे गुजरे लेकिन फिर अकाल पड़ा और चीजें बिगड़ती ही गईं।

हमें धीरे-धीरे अपने पशुओं की संख्या कम करनी पड़ी। हम आजीविका के लिए दूसरों के मवेशियों पर ज्यादा निर्भर होने लगे। हम अपना गुजारा करने के लिए दूसरों के पशुओं को चराने के लिए ले जाने लगे और थोड़ा-बहुत मजदूरी का काम करने लगे। लेकिन धीरे-धीरे यह काम भी मुश्किल होने लगा क्योंकि पहले की तरह अब चारा भूमि बची नहीं थी। यह काम भी हाथ से गया।

हम अहमदाबाद आ गए। मैं और मेरी बेटी दोनों मिलकर कोठियों में काम करने लगे लेकिन इससे हमारा गुजारा नहीं चल पा रहा था। हमें वापस लौटकर गाँव आना पड़ा। हमारे बच्चों पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा जिससे उनकी शिक्षा को काफी नुकसान हुआ। अगर हमारे पास पर्याप्त चारा भूमि होती तो हम भी अपना गुजारा कर सकते थे।

आज थोड़ी सी जमीन छोड़कर बाकी सारी जमीन बिक चुकी है। मुझे पता नहीं मेरी इस बदहाली के पीछे कौन जिम्मेदार है? किस कारण से सारी चारागाह की भूमि तबाह हो गई? क्यों आजकल मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंध इतने कड़वे हो चुके हैं? किसकी वजह से एक समय का खुशहाल व समृद्ध समुदाय आज दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर है?

tck tck tck 07.12.09 Copenhagen

ORGANISERS

Arthik Anusandhan Kendra, UP
ASHA, MP
Bharat Jan Vigyan Jattha, Delhi
CECOEDECON, Rajasthan
Centre for Sustainable Agriculture, AP
Chhattisgarh Citizens' Initiative, Chhattisgarh
Development Support Team, Maharashtra
Forum for Biotechnology and Food Security, Delhi
Gene Campaign, Delhi
Gram Vikas Navyuvak Mandal Laporiya, Rajasthan
Gramin Swabhiman Sansthan, Rajasthan
Institute of Development Stuidies, Rajasthan
Jagriti Seva Sanstha, Chhattisgarh
Jamin Adhikar Andolan, Maharashtra
Kalptaru Vikas Samiti, MP
Kisan Sewa Samiti Chaksu & Phagi, Rajasthan
Kisan Sewa Samiti Malpura, Rajasthan
Kisan Sewa Samiti Newai, Rajasthan
Kisan Sewa Samiti Shahbad, Rajasthan
Lokayan, Delhi
Mahila Sanchetna, MP
Maldhari Rural Action Group, Gujarat
MANAVI, Jharkhand
Oxfam India, Delhi
PAIRVI, Delhi
Parmarth Samaj Sevi Sansthan, UP
Peoples Action for National Integration, UP
Rural Development Centre, Maharashtra
Samarpan Jan Kalyan Samiti, UP
Samarthan, MP
SANSAD, Delhi
Satya Path, Bihar
Seva Mandir, Rajasthan
South Asia Dialouge for Ecological Democracy, Delhi
Uttaranchal Development Institute, Uttarakhand
UNNATI, Gujarat
Van Panchayat, Uttarakhand
Vasudev Kutumbakam, Delhi
Vidyasagar Samajik Suraksha Seva Evam Shodh Sansthan, Bihar
Vikas Anusandhan Avam Shekshanik Pragati Sansthan, MP
Wada Na Todo Abhiyan, Delhi
YUVA - Rural, Maharashtra

Contacts
Programme: Mr. Ajay K. Jha +91-9717771255 | Dr. Alka Awasthi +91-9829641100
CECOEDECON, Swaraj, F-159-160, Sitapura Institutional & Industrial Area, Jaipur-302022 (Raj.) India
PAIRVI, G-30, Ist Floor, lajpat Nagar III, New Delhi-110024, India